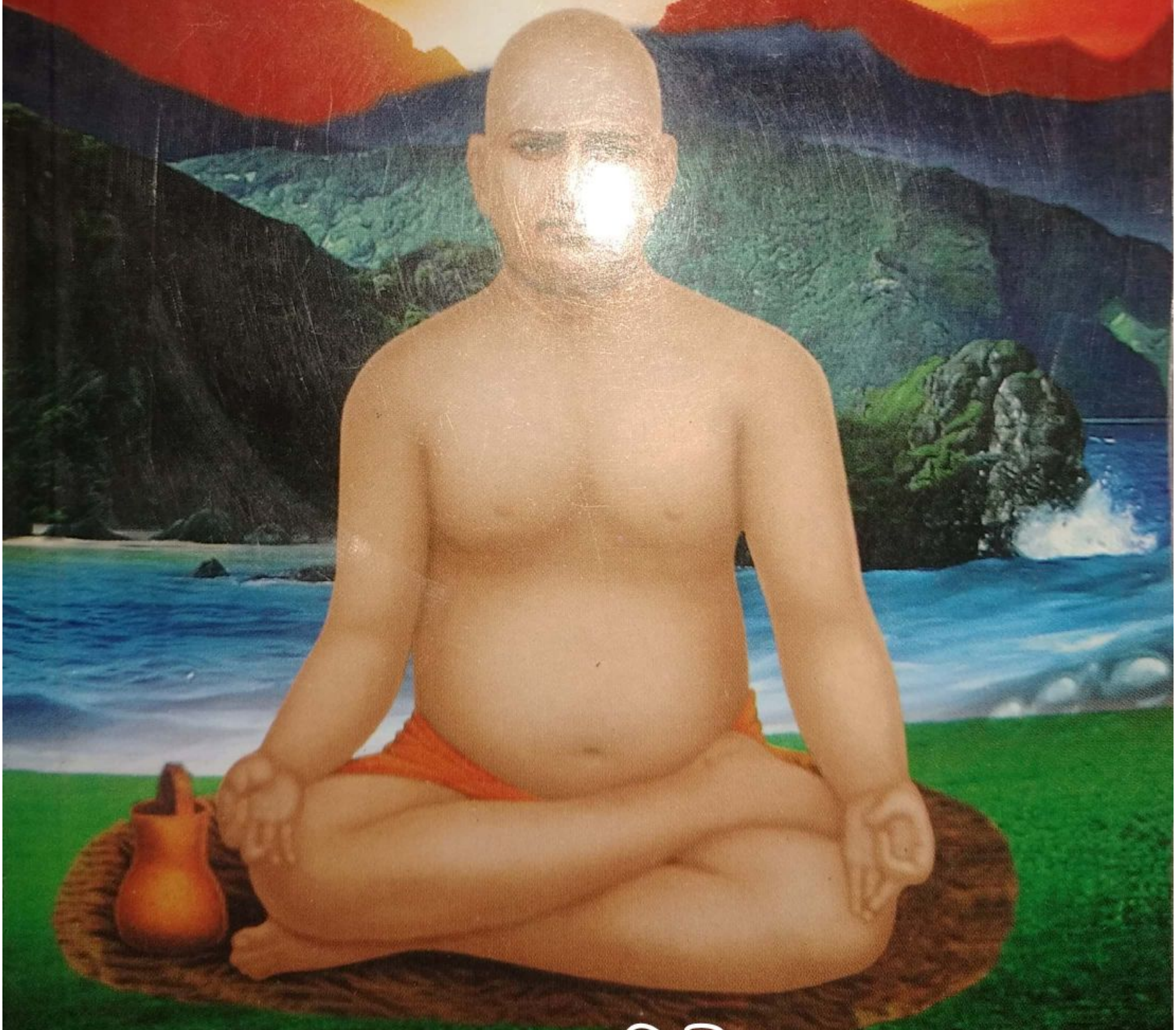
॥ओ३म्॥

ऋषि कल्प

—स्वामी वेदानन्द सरस्वती



विषय सूची

प्राक्कथन

मानव समाज में जो व्यक्ति जनहित कार्यों में अपनी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक आदि सभी प्रकार की शक्तियों को समर्पित कर देता है, उसे सभी लोग देवता कहने लगते हैं। सभी लोग उसे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखने लगते हैं। दूसरी ओर समाज में वे लोग होते हैं जिन्हें देवता भी अपना पूज्य मानते हैं। उन्हें ऋषि नाम से पुकारा जाता है। ऋषि देवताओं के भी शिरोमणि होते हैं।

'यस्य वाक्यम् सः ऋषिः' अर्थात् जिसके शब्दों को परम प्रमाण माना जाता है—वह ऋषि कहलाता है। ऋषि के शब्दों को परम प्रमाण मानने में सबसे बड़ा हेतु होता है कि वह जो कुछ भी बोलता है स्वानुभूत ही बोलता है। इसीलिए कहा गया है—**'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः'** अर्थात—जिन्होंने वेदों में प्रतिपादित ऋचाओं के धर्म (अर्थों) का साक्षात्कार कर लिया है—वे ही ऋषि कहलाते हैं।

समाज के प्रबुद्ध शिक्षित व्यक्ति ही नहीं अपितु जन सामान्य भी ऋषि और देवता को पहचानने लगते हैं। हमारे अपने साथ गुजरी एक घटना को देखकर हम स्वयं दंग रह गये। एक समय की बात है—मेरठ में हम एक प्राकृतिक चिकित्सक से मिलने गये थे। चिकित्सक के साथ वार्तालाप करने के बाद हमने उनके यहाँ की विक्री विभाग की पुस्तक देखने के लिये, उनकी दुकान के विषय में पूछा। डॉक्टर ने इशारा किया कि बराबर में नजदीक में ही दुकान है। हम उस दुकान पर गये। वहाँ एक महिला अपने बच्चे के साथ बैठी हुई थी। हमें देखकर महिला खड़ी हो गई और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। साथ में बैठे हुए अपने बच्चे को भी उस महिला ने कहा—बेटा! स्वामी जी को प्रणाम करो। बच्चे ने कहा—मम्मी! स्वामी जी नहीं। उस देवी ने बच्चे से फिर कहा—बेटा! स्वामी जी तो हैं, प्रणाम करो। बच्चे ने फिर कहा—

मम्मी! स्वामी जी नहीं हैं। पुनः तीसरी बार अपनी माँ के कहने पर बच्चा बोला—मम्मी! स्वामी जी नहीं, ये ऋषि हैं। वह देवी बच्चे की बात को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। फिर बच्चे से बोली, अच्छा बेटा! ऋषि जी को प्रणाम तो करो। तब बच्चे ने हमें दोनों हाथ जोड़ सिर झुका प्रणाम किया। हमनें भी बच्चे को आशीर्वाद दिया। हमें बच्चे की इस सूक्ष्म परख पर आश्चर्य भी हुवा कि वह स्वामी और ऋषि में भेद करना कैसे जानता है। बच्चे की आयु लगभग ३-४ वर्ष थी। बच्चा प्रतिभाशाली था। वह उन्हीं डॉक्टर साहब का बालक था जिनसे हम मिलने गये थे।

यह घटना स्पष्ट करती है कि प्रत्येक सन्यासी ऋषि नहीं हो सकता। कोई ऋषि सन्यासी वेश में तो हो सकता है किन्तु प्रत्येक सन्यासी या साधु महात्मा को ऋषि नहीं कह सकते। हमें आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि बच्चे ने स्वामी और ऋषि के इस भेद को कैसे पहचान लिया? भेद की व्याख्या तो वह बालक क्या बड़े-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति भी सही से नहीं कर पाते, फिर भी उसकी अन्तरात्मा उसे वैसा बोलने के लिए बाध्य कर रही थी।

गुरुजनों से वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करते समय ब्राह्मण ग्रन्थों में हमारे पढने में आया कि—

१. ऋषयः कवयः। —मै० ४.१.२॥

अर्थात् ऋषिजन कवि होते हैं।

२. ऋषिर्हस्म मन्त्रकृद् ब्राह्मण आजायते॥

—जैमिनिय ब्रा० २.२६६॥

अर्थात् मन्त्रार्थ का दर्शन करने वाला ब्राह्मण ही ऋषि हो जाता है।

३. ऋषिर्विप्राणाम् पदवीमत्येति।—तै०स० ३.४.११.१;

काठ० २३.१२; तै० आरण्यक १०.१०.१॥

अर्थात् ऋषि विप्रों की पदवी का भी अतिक्रमण कर जाता है। इसी भाव को महर्षि यास्क ने निरुक्त में प्रकट किया है—

१. साक्षात्कृत धर्माण ऋषियो बभूवुः। —निरु० १.२०॥

अर्थात् मन्त्रार्थ का साक्षात् करने वाले ऋषि सृष्टि के आदि में पैदा हुए।

२. ऋषि दर्शनात्। —निरु० २.११॥

अर्थात् जिन दिव्यात्माओं ने अपने हृदय में परमेश्वरीय ज्ञान वेद का साक्षात् दर्शन किया वे ही ऋषि कहलाये।

महर्षि पतञ्जलि अष्टाध्यायी महाभाष्य में लिखते हैं—

रक्षार्थं वेदानामध्येयम् व्याकरणम्।

अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। हमें व्याकरण पढ़ने के बाद वेद के स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी।

वेद में हमने जब यह पढ़ा—

ऋषी बोधप्रतिबोधौ। —अथर्व० ५.३०.१०॥

अर्थात् बोध और प्रतिबोध दो ऋषि हैं, तो इस सूक्ति से हमारे मन में ऋषि पद को लेकर एक प्रबल जिज्ञासा जाग खड़ी हुई। और उस जिज्ञासा के समाधान हेतु हमनें चारों संहिता का कईं-कईं बार पारायण किया। ऋचाओं में जहाँ-जहाँ भी हमें ऋषि पद मिला उन सबको हमने संग्रहित किया। वेदों में ऋषिपद किन-किन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—उसका हमनें सूक्ष्मता से चिन्तन किया। ऋषिपद का मुख्यार्थ, ईश्वर, ऋषिकर्त्ता, ऋषिस्तुत्य, ऋषि लक्षण, ऋषित्व की कामना, उसके पूरा करने के उपाय आदि विषय हमें वेद संहिताओं में उपलब्ध हुए। उन सब के परिणामस्वरूप यह 'ऋषि-कल्प' ग्रन्थ तैयार हो गया है। ऋषि विषय पर वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, निरुक्तकार, बृहद्देवता में आचार्य शौनक, आर्षानुक्रमणी में वेंकट माधव, कात्यायनीय सर्वानुक्रमणि तथा गृहसूत्र आदि ग्रन्थों में ऋषि विषय पर जो भी विचार हमें उपलब्ध हुए उन सब का संकलन इस लघु ग्रन्थ में किया गया है।

इसके अलावा किसी ब्राह्मण को ऋषि पद प्राप्त करने के लिए किन-किन उपायों का अवलम्बन आवश्यक है। अर्थात् कोई विद्वान्

ब्राह्मण ऋषि बनने के लिए क्या-क्या उपाय करे—इस विषय पर हमने अपने स्वतन्त्र विचार शास्त्रों के आधार पर प्रस्तुत किये हैं। आशा है स्वाध्यायशील व्यक्ति इससे अवश्य लाभ उठायेंगे। तथा अपने जीवन के कल्याण और जगत् के उपकार के लिए कृत संकल्प होगें। ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर यदि कुछ व्यक्ति भी ऋषित्व पद प्राप्ति की दिशा में उत्साहित हुवे तो हमारा लेखन प्रयत्न सार्थक होगा।

—विदुषामनुचरः

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

(उत्तरकाशी)

सम्पर्क : ९४१२१४३६४९

ऋषि लक्षण

यह एक सहज और स्वाभाविक प्रश्न है कि ऋषि किसे कहते हैं? ऋषि का क्या लक्षण है? अथर्ववेद संहिता में ऋषि लक्षण दिखलाये गये हैं। इन लक्षणों के आधार पर हम ऋषि की पहचान कर सकते हैं।

ऋषीं बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्॥ १॥

—अथर्व० ५.३०.१०॥

भावार्थ—बोध और प्रतिबोध ये दो ऋषी हैं, जो सदा प्रमाद रहित और जागरूक रहते हैं। अर्थात् कभी सोते नहीं सदा जागृत रहते हैं। वे दोनों तेरे प्राणों के रक्षक हैं। जो दिन और रात जागते हैं।

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वाऽनवद्राणश्च रक्षताम्। गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्॥ २॥

—अथर्व० ८.१.१३॥

भावार्थ—बोध और प्रतिबोध, अस्वप्न और अनवद्राण, गोपायन और जागृवि तेरी रक्षा करें।

अनवद्राण=सदा स्थिर रहने वाला, जो मैदान से नहीं भागता, कभी लज्जित नहीं होता। द्रा—**कुत्सायां गतौ** (धातुपाठ २.४९) जो कभी कुत्सित मार्ग में कदम ही नहीं रखता; वह अनवद्राण कहलाता है।

ऐसे बोध, प्रतिबोध जो अप्रमाद, अनवद्राण, रक्षण और सदैव जागरूकता से युक्त हों। ये ही ऋषियों के लक्षण हैं। जहाँ भी ये लक्षण देखें जाएं वहीं ऋषित्व समझना चाहिए।

प्रथम मन्त्र में बोध, प्रतिबोध को ऋषि कहा है। उनकी विशेषता बतलायी हैं। जो सदैव स्वप्न रहित होकर जागरूक रहते हैं। जिस जीवन में ये बोध-प्रतिबोध अवतरित हो जाते हैं, उसकी ये दिन-रात रक्षा करते हैं। द्वितीय मन्त्र में बोध-प्रतिबोध का एक और विशेषण

अनवद्राण भी बतलाया है। जिसका अर्थ है—सन्मार्ग पर सदैव दृढ़ता से स्थिर रहने वाला तथा भूलकर भी कभी कुत्सित मार्ग में एक कदम भी न रखने वाला। ऐसी परिपंक्व स्थिति के बोध-प्रतिबोध ही जीवन की सदैव रक्षा करते हैं। इन बोध-प्रतिबोध के धारक जीवात्मा की भी तद्धित प्रयोग से ऋषि संज्ञा होती है। बिना बोध-प्रतिबोध के कोई जीवात्मा ऋषित्व पद को प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए यास्क के मतानुसार ऋषि दर्शनात्: अर्थात् सूक्ष्माति सूक्ष्म दर्शन से ही जीवात्मा ऋषित्व पद को प्राप्त करता है। बोध-प्रतिबोधात्मक शक्ति को ही यास्क दर्शन शक्ति कह रहे हैं। दर्शन से अभिप्राय केवल मात्र चाक्षुष दर्शन नहीं है। अपितु वह आत्मा का विवेक ही दर्शन है।

ऋग्वेद में मन्त्र है—

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्। ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः॥ ३॥ — ऋ० १०.२६.५॥

अर्थात् ऋषि कौन होता है? इसके उत्तर में कहा गया है कि जो यज्ञों का पोषक है, सूर्यादि लोकों का प्रकाशक, रथों के अश्वों का प्रेरक, मनस्वियों का हितेषी, विप्रों के दुःखों को दूर करने वाला, सज्जनों का सदा सखा उसी परमेश्वर को सबका द्रष्टा ऋषि जानना चाहिए।

बोध, प्रतिबोध का एक दृष्टान्त—एक व्यक्ति ने डॉक्टर से इस शर्त पर अपनी आखों का ऑपरेशन करवाया कि उसकी फीस नेत्र ज्योति लौट आने पर ही देगा। डॉ० ने स्वीकारते हुए ऑपरेशन कर दिया और उसकी नेत्र ज्योति ठीक हो गई। डॉ० ने फीस देने को कहा। उस व्यक्ति ने कहा—आपके पास क्या प्रमाण है कि मेरी नेत्र ज्योति ठीक काम करने लगी है। डॉ० ने विषय बदलकर कहा कि यह देखो गुलाब का यह पीला फूल कितना प्रिय है। उस व्यक्ति ने कहा कि डॉ० साहब यह पीला नहीं गुलाबी फूल है। डॉ० ने तुरन्त कहा कि यही प्रमाण है कि आपकी नेत्र ज्योति ठीक काम कर रही हैं। नेत्रों से वस्तु को यथार्थ देखना बोध है। उस बोध का भी बोध हो जाना प्रतिबोध है।

प्रथम अध्याय

संहिताओं में ऋषि अर्थात् ईश्वर

ऋक्-संहिता के अनुशीलन में ऋषि-पद का प्रयोग अनेक अर्थों में देखा जाता है। यथा—ईश्वर, वेदार्थ द्रष्टा, ऋषिकर्त्ता, प्राचीन और नवीन ऋषि, राजर्षि, सप्तर्षि आदि विविध रूपों वाले ऋषि। यहाँ हम अपने मत की पुष्टि में प्रमाण पुरस्सर उपर्युक्त अर्थों को दर्शाने वाली ऋचाओं को प्रस्तुत करेगें।

सर्व प्रथम ईश्वरार्थ वाची ऋचाओं को दर्शाते हैं—

ऋग्वेद संहिता में 'ऋषि-पद'

१. **अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।**
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा॥

—ऋ० ४.२६.१॥

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है। इन्द्र कहता है कि हे मनुष्यो! मैं मनस्वी हूँ। सूर्य सदृश सब संसार का प्रकाशक हूँ। मैं कक्षीान् ऋषि हूँ। मैं विप्र हूँ। सहज स्वभाव से सिद्ध (कुत्स) वज्र हूँ। मैं ही उशना कवि हूँ। तुम सब मुझे देखो।

इस सूक्त की अगली ऋचा में कहते हैं कि मैं आर्यों के लिए पृथ्वी का राज्य देता हूँ। दानी मनुष्यों के लिए धन की वर्षा करता हूँ। मैं ही प्राणी और जीवों को कर्मफल प्रदान करता हूँ। मेरी कामना करते हुए देव जन उत्तम आचरण करते हैं।

२. **ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।**
इन्द्र चोष्कूयसे वसु॥ —ऋ० ८.६.४१॥

हे इन्द्र! आप हम सबसे सदा पूर्व विराजमान् ऋषि हैं। अपने पराक्रम से आप अकेले ही जगत् पर शासन करते हैं। धनादि ऐश्वर्य

आप सब को अतिशय से दे रहे हो।

३. इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः।
महान्महीभिः शचीभिः —ऋ० ८.१६.७॥

इन्द्र ही ब्रह्मा है। ऋषि है। इन्द्र का बहुत-बहुत आवाहन किया जाता है। अपनी महाशक्तियों के कारण ही वह महान् है।

निरुक्त ११.१६ में अङ्गिरा का पुत्र सुधन्वा तथा सुधन्वा के ऋभव, विभ्वा और वाज ये तीन पुत्र बतलाये हैं। ये मर्त्य होकर भी अमर हो गये। ऋभु आदित्य में सोते हैं। आदित्य की रश्मियों को भी ऋभव कहते हैं।

४. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥

—ऋ० १.३१.१॥

यहाँ मन्त्र का देवता अग्नि है। मन्त्र का भावार्थ है कि हे अग्ने! आप अनादि अङ्गिरा ऋषि हैं। देवों के देव और कल्याणकारी मित्र हो। ज्ञान पिपासु, धर्मात्मा जन आप के व्रतों का पालन करके ही ज्ञान-चक्षु को पाते हैं। इस सूक्त की अगली ऋक् में उसे अङ्गिरसतम कहा है, मातरिश्वा, पुष्टिवर्धन, प्रमति पिता, ऋषिकृत् मर्त्यानाम् आदि नामों से भी स्मरण किया गया है।

५. तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव॥

—ऋ० ३.२१.३॥

हे अग्ने! हे ऋषि श्रेष्ठ! घृत से सिञ्चित स्तोक तुझ विप्र के लिए ही हैं। आप इन से प्रकाशित होते हैं। आप हमारे यज्ञ की रक्षा कीजिए।

(O Agne! You are the best seers..........)

—ऋग्वेद भाष्य—डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती

६. अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः॥

—ऋ० ५.२९.१॥

हे इन्द्र! पवित्र बल वाले मरूत तेरी पूजा करते हैं। आप इन के धीर ऋषि हो।

७. न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥

—ऋ० ५.५४.७॥

दयानन्द भाष्य—**यो अजरा अमर सच्चिदानन्द स्वरूपो नित्य गुण कर्म स्वभावो जगदीश्वरोऽस्ति तं ऋषिं राजानं यूयम् सर्वे मनुष्या उपाध्यम्।**

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जिस ऋषि अर्थात् सर्वद्रष्टा और सब के राजा उस परमेश्वर की उपासना करते हो, उसे न जीता जा सकता है। न मारा जा सकता है। न वह नष्ट होता है। न ही पीड़ित होता है। वह न हिंसा करता है। उसके रक्षणादि व्यवहार और धन भी कभी नष्ट नहीं होते।

८. अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः॥

—ऋ० ६.१४.२॥

भावार्थ—अग्नि ही प्रचेता और विद्वानों में श्रेष्ठ ऋषि है। यज्ञों में मनुष्य उसी होता अग्नि की उपासना करते हैं।

९. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥ —ऋ० ९.६६.२०॥

अर्थात् अग्नि ऋषि है। वह पवमान है। सभी में सत्कार योग्य है। वह जगत् का पुरोहित है। उस महान् घर वाले अग्नि की हम स्तुति करते हैं।

Adorable lord, the penetrating seer, is just another form of the pure and flowing. (Dr. Satya Prakash)

ऋग्वेद का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने प्रथम मन्त्र में ही अग्नि शब्द का मुख्य अर्थ ईश्वर किया है।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुह्वास्यः॥ —ऋ० १.१२.६॥

इसमें अग्नि को कवि, गृहपति और युवा कहा है।

इससे अगले मन्त्र में कहा है—

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम्॥
—ऋ० १.१२.७॥

हे मनुष्य! तू (अध्वरे) उपासनादि व्यवहारों में, सत्य धर्मा, कवि, (अमीवचातन) अज्ञानादि दोषों को दूर करने वाले अग्निदेव की ही स्तुति किया कर। (दयानन्द भाष्य)

वेदों में अनेकत्र अग्नि शब्द परमेश्वर अर्थ में प्रयोग हुआ है। उसी अग्निस्वरूप, सब अर्थों के प्रकाशक परमेश्वर का उपर्युक्त मन्त्रों में ऋषिः पद से स्मरण किया गया है। वही परमेश्वर वेदों के अर्थों का यथार्थ द्रष्टा और प्रकाशक है अतएव उसे वेधस्तम ऋषि कहा है।

१०. प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः।
व्रता विदान आयुधा॥ —ऋ० ९.३५.४॥

इस मन्त्र का देवता पवमान सोम है। वह सोम देवता कैसा है? (इन्दु) सर्वैश्वर्यवान् (सिषासन्) अपने भक्तों को चाहने वाला (वाजसा) अन्नों के भण्डार का स्वामी (ऋषिः) वेदार्थ का ज्ञाता (व्रता विदान आयुधा) सम्पूर्ण कर्मों और आयुधों से युक्त (वाजम्) अन्नादिधनों को (प्रेष्यति) अपने उपासकों को प्रदान करता है।

ऋग्वेद (१०.४७.३) में देखिये—

११. सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥

हे इन्द्र! हम तुझे (सुब्रह्माणम्) उत्तम ज्ञानी (देववन्तं) देवगुणों का भण्डार (बृहन्तम्) महान् से महान् (उरूं) श्रेष्ठ (पृथुबुध्नम्) विशाल आश्रय वाला (श्रुत ऋषिम्) भक्तों की सुनने वाला ऋषि (उग्रम्) दुष्टों को भय दाता (अभिमातिसाहम्) अभिमानियों के मद का चूर्ण करने

वाला-जानकर स्मरण करते हैं। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (चित्रम् रयिम्) विचित्र धनों और (वृषणम्) सुखों को (दा) दीजिए।

आठ मन्त्रों के इस सूक्त में इन्द्र को वसुपति वसुनाम्, गोपति गोनाम्, धरूणं रयीणाम्, सनद्वाज, विप्रवीर, सुदक्ष, दस्युहन्ता, सत्यस्वरूप, भद्रवात, रथारूढ आदि नामों से पुकारा गया है। इससे अगले ४८वें सूक्त में स्वयं इन्द्र कह रहा है कि मैं तीनों लोकों का पति हूँ। सब धनों का विजेता हूँ। सब प्राणियों का पिता हूँ। मैं सबको भोजन देता हूँ। मैं कभी पराजित नहीं होता। मेरे धन अक्षय हैं। मैं दस्युवों का सब कुछ हर लेता हूँ। आर्यों को भूमि का राज्य देता हूँ। साधकों को आत्म बोध कराके इन्द्रियों का स्वामी बना देता हूँ। मेरी आज्ञा का पालन करके तुम सफल मनोरथ हो जाओगे और कभी परास्त नहीं होगें।

इतने विवेचन से स्पष्ट है कि यह इन्द्र परमेश्वर ही है अन्य कोई नहीं।

यजुर्वेद संहिता में 'ऋषि-पद'

जिस प्रकार ऋग्वेद संहिता में हमने देखा है कि ऋषि-पद का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है उसी प्रकार अब याजुष संहिता में भी देखेगें कि कहीं तो ऋषि ईश्वर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कहीं प्राणों के अर्थ में तथा कहीं अन्य वेदार्थ वेत्ताओं के अर्थ में।

यहां प्रथम हम ईश्वरार्थ में जहाँ-जहाँ ऋषि-पद का प्रयोग हुआ है। उन मन्त्रों को दर्शाते हैं—

१. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥ —यजुः० २६.९॥

२. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥
—यजुः० ३४.१२॥

ये दोनों मन्त्र ऋग्वेद (९.६६.२०) तथा (१.३१.१) में क्रमशः आये हैं। इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या हम पूर्व कर आये हैं। पुनः अर्थ

करना पिष्टपेषणवत् ही होगा। भाव केवल इतना ही है कि यहां भी अग्नि को ही ऋषि बतला रहे हैं। पवमान अग्नि ऋषि देवों का देव, कल्याणकारी सखा है। अग्नि नाम जगत् और ज्ञान के प्रकाश करने वाले परमेश्वर का है। वही आदि ऋषि हैं।

३. अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳशुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम्॥ —यजुः० ३.१६॥

सब विद्याओं के वेत्ता विद्वान्, परमेश्वर के सहस्रों विज्ञानों को जान करके उस ऋषि (परमेश्वर) को प्राप्त होते हैं।

यह मन्त्र ऋ० (९.५१.१) तथा साम०उ० [१(२).१६.१] में भी आया है। यह बड़ा प्रसिद्ध मन्त्र हैं। मन्त्र के शब्दार्थ का अवलोकन कीजिए—

(अस्य) इस अग्निस्वरूप परमेश्वर के जो कि (प्रत्नाम्) प्राचीन अनादि स्वरूप से नित्य वर्तमान (द्युतम्) दीप्ति युक्त (शुक्रम्) शुद्धस्वरूप (सहस्रसामृषिम्) असंख्यात विज्ञानों का द्रष्टा ऋषि है इसको जानकर (अह्रयः) विद्वान लोग इसके (पयः) ज्ञानरूप रस को (अनु दुदुह्रे) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हैं अर्थात् संसार में उस का प्रचार प्रसार करके सुखों से संसार को पूर्ण करते हैं। इस मन्त्र का देवता अग्नि है। आध्यात्मिक अर्थों में यह अग्नि परमेश्वर है। भौतिक अर्थों में भौतिक अग्नि ही है। ऐसा ही महर्षि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद के भाष्य में दर्शाया है।

सामवेद संहिता में 'ऋषि-पद'

ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की भाँति सामवेद संहिता में भी ऋषि-पद का प्रयोग ईश्वर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिन ऋचाओं में ऋषि पद ईश्वर अर्थ को कहता है, उन्हें हम नीचे दिखलाते हैं—

१. ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां ३ गुह्यं नाम गोनाम्॥

—साम०उ० १(१) १०(३); ऋ० ३.८७.३॥

अर्थात् (विप्र) मेधावी (ऋषि) वेदों का प्रकाशक (जनानाम्) मनुष्यों को अपने (काव्येन) वेद विज्ञान से (पुरःएता) आगे उन्नति की ओर ले जाता है। वह अत्यन्त धीर और (उशना) सब का हित चिन्तक है। वह (चित्) ज्ञानस्वरूप (निहितम्) हृदय गुहा में जो स्थित है उस सब को (विवेद) भली प्रकार जानता है। वह वेद की ऋचाओं में (अपीच्यम्) छिपा हुआ (गुह्य नाम) एक गोपनीय नाम से जाना जाता है।

यहाँ ऋषि, विप्र, उशना उस जगदीश्वर के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

२. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम्॥

—साम० उ० १(२) १६(१); ऋ० ९.५४.१; यजु० ३.१६॥

अर्थात् यह बड़ा प्रसिद्ध मन्त्र है। तीनों संहिताओं में इसका पाठ मिलता है। जिसका अर्थ है कि (अह्रयः) उपासना में लज्जा का अनुभव न करने वाले उपासक लोग (सहस्रसामृषिम्) हजारों सुखों के दाता वेद प्रकाशक ऋषि परमेश्वर से (प्रत्नामनु) अनादि परम्परा के अनुसार प्राप्त (अस्य) इस (द्युतम्) प्रकाशमान् परम ज्योति को जो कि (पयः) दूध के समान (शुक्रम्) विशुद्ध है (दुदुह्रे) दुहते हैं। यह मन्त्र हम पहले भी दिखा चुके हैं।

३. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥

—साम०उ० ३(१) १९(२); ऋ० ९.९६.६॥

अर्थात् (सोमः) सर्वोत्पादक परमेश्वर (पवित्रम्) पवित्रतम् है। वह देवों का ब्रह्मा, कवियों की पदवी, विप्रों का ऋषि, मृगों का महिष, गृध्रों में श्येन, वनस्पतियों में स्वधिति है। अपने उपासक के लिए मानों कि वह (रेभन्) गर्जना करता हुआ (अत्येति) प्रकट होता है।

यहाँ भी ईश्वर को विप्रों का ऋषि कहा गया है।

४. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥

—साम०उ० ७(१) १२(२); ऋ० ९.६६.२०; यजु० २६.९॥

अर्थात् (अग्नि) परमेश्वर ऋषि है, पवमान है, प्रजाजन का हितकारी है, इस संसार रूपी यज्ञ का पुरोहित है। उस महान् घर वाले की हम लोग स्तुति करते हैं।

अथर्ववेद संहिता में 'ऋषि-पद'

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद संहिताओं में जिस प्रकार हम ने ऋषि पद का प्रयोग ईश्वर के अर्थ में देखा उसी प्रकार अथर्ववेद की संहिता में भी ऋषि-पद ईश्वर के अर्थों में मिलता है। देखिये मन्त्र प्रस्तुत हैं—

१. को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः॥
२. एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते॥

—अथर्व० ८.९.२५, २६॥

पूर्व मन्त्र में प्रश्न किये गये हैं दूसरे मन्त्र में उनके उत्तर दिये हैं।

एक मात्र गौ कौन सी है? एक अद्वितीय ऋषि कौन है? एक धाम और एक आशिष कौन सा है? एकवृत कौन है? और एक मात्र ऋतु कौन सी है?

उत्तर है कि वेदवाक् एक मात्र गौ है। जगत् का एकमात्र साक्षी परमेश्वर ही ऋषि है। वही सब का धाम और उसकी कृपा ही आशिष है। वह परमेश्वर ही एकवृत् है। उसका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। ज्ञान और भक्ति द्वारा वह सदा ही प्राप्य है। अतः सदा एक ही ऋतु है।

अथर्व० १०.७.३८ में भी ईश्वर को महद् यक्ष=पूजनीय कहा गया

है।

अथर्ववेद के १३वें काण्ड के सूक्त ४(१) के मन्त्र १२ तथा १३ में ईश्वर को एकवृत् कहा है—

स एष एक एकवृदेक एव॥
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति॥

अर्थात् वह बल सामर्थ्य युक्त परमेश्वर एक अकेला ही बिना किसी सहाय के वर्तमान है। सब देव उसी के अनुशासन का पालन करते हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता।

३. यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

—अथर्व० १०.७.१४॥

अर्थात् जहाँ वेदों के प्रकाशक प्रथमोत्पन्न चारों ऋषि तथा ऋक्, यजु, साम, अथर्व नामाख्य चारों वेद जिस एकर्षि में अर्पित हो जाते हैं, वह सब जग का आधार परमेश्वर ही अतिशय सुखस्वरूप है। उसी के विषय में तुम लोग चर्चा करो।

४. वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः॥

—अथर्व० १०.१०.२६॥

अर्थात् जगत् को वश में रखने वाली परमेश्वरीय शक्ति को ही अमृत कहते हैं। मृत्यु रूप में भी उसी की उपासना की जाती है। देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि-पंच जन रूप में वह वशा ही मानो अभिव्यक्त हो रही है।

इसी सूक्त में कहा गया है कि वशा ने तीनों लोकों को धारण किया है। उसमें ऋत्, तप और ब्रह्म=ज्ञान अर्पित हैं। देव तथा मनुष्य सब उसी के आश्रय पर जीते हैं। यह वशा अन्य कुछ भी नहीं, परमेश्वर का ही दूसरा नाम है।

५. ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्ठीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत्समदधादृषिः॥
६. शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत्सन्धा समदधान्मही॥

—अथर्व० ११.८.१४, १५॥

अर्थात् प्रथम मन्त्र में प्रश्न किया है कि जंघा, दो पैर, दोनों घुटने, सिर, दोनों हाथ, पसलियाँ, हसली, पार्श्व आदि शरीर के अँगों को किस ऋषि ने इतने सुन्दर वैज्ञानिक ढंग से जोड़ा है? दूसरे मन्त्र में पूर्व प्रश्न का उत्तर दिया है कि सिर, दोनों हाथ, मुख, जिह्वा ग्रीवा, पीठ के मोहरे आदि शरीर के सब अँगों को विधिवत् जोड़कर संधा देवी ने त्वचा से ढ़क दिया है।

इसी सूक्त के १७वें मन्त्र में संधा को ईश्वर की सती वधू कहा है। यह ईश्वर की शक्ति का ही नाम है। जिसे मन्त्र में ऋषि भी कहा गया है।

७. स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत। तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत्किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम्॥

—अर्थव० १३.१.५५॥

अर्थात् वह सृष्टि यज्ञ जो कि पहले कल्प में भी था, भविष्य में भी होगा तथा इस कल्प में भी बहुत विस्तार के साथ प्रकट हुआ है। उसी यज्ञ से यह सब कुछ जो भी दिखाई दे रहा है, उत्पन्न हुआ है। यह सब **रोहित ऋषि** द्वारा धारण किया गया है।

ऋ० १३.१.२६ में रोहित शब्द का निर्वचन दिखाया गया है— सर्वा रूरोह रोहितो रूहः अर्थात् जो भी (रूहः) दृश्य-अदृश्य पदार्थ हैं उस (सर्वा) सब को (रूरोह) उत्पन्न किया है जिसने (सः रोहितः) **वही रोहित नाम का ऋषि है।**

रूह बीज जन्मनि प्रादुर्भाव च (धातु पाठ)

८. आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि॥

—अथर्व० २०.१४०.२॥

अर्थात् ऋषि=वेदों का प्रकाशक परमेश्वर (वामया) अपने विज्ञान से अश्विनौ के स्तोम को ठीक-ठीक निश्चयपूर्वक जानता है। उत्तम मधुमयी सोम के विज्ञान का वह सच्चे जिज्ञासु को उपदेश करता है।

❑❑

द्वितीय अध्याय

संहिताओं में ऋषि कर्त्ता

ऋग्वेद में 'ऋषिकर्त्ता'

स्वयं वेद कहता है—**अग्निनाग्निः समिध्यते** अर्थात् अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है। दीप से दीप जलता है। परमेश्वर स्वयं ऋषि है तभी तो वह अपने उपासकों को ऋषि बनाने में सक्षम है। वही मनुष्यों को ऋषि बनाने वाला है। इस विषय में वेद के प्रमाण हैं।

१. इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥

—ऋ० १.३१.१६॥

अर्थात् हे अग्ने! आप (इमाम् शरणिम् मीमृषः) इस अविद्या अन्धकार को दूर भगाने वाले हैं (दूरात्) दूर से (इमम्) इस (अध्वानम्) धर्म मार्ग को (अगाम) हमने प्राप्त किया है। आप हमारे (आपिः पिता) प्यारे पिता हो, (प्रमतिः सोम्यानाम्) सोम्य गुणों से युक्त उत्तम बुद्धि के दाता हो (भृमिः असि) तीनों लोकों में भ्रमण करने वाले सदा सर्वत्र प्राप्त हो तथा आप ही (ऋषिकृन्मर्त्यानाम्) मरण धर्मा मनुष्यों को ऋषि बनाने वाले हो।

२. स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः॥

—ऋ० ४.३६.६॥

अर्थात् वही मनुष्य (वाजी) ज्ञानी, (अर्वा) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाला, (वचस्यया) अति प्रशंसा युक्त (ऋषि) ऋषि (शूर) दुष्टों की सेना का विनाशक, (रायस्पोषम्) धनों का पोषक, (सुवीर्यं) उत्तम बल पराक्रम को (दधे) धारण करता है जिसको (ऋभवः) परमेश्वर

अपने (विम्बा) विद्या विज्ञान से (आविषुः) युक्त करता और (वाजः) अपने उत्तम ज्ञान में धारण करता है।

३. सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥

—ऋ० ७.३३.१३॥

अर्थात् (सत्रे ह जातौ इषिता समानम्) विद्या विज्ञान सत्र में एक समान बढ़े हुए तपस्वी अध्यापक और उपदेशक तथा माता-पिता (नमोभिः) सम्मान के साथ (कुम्भे रेतः सिषिचतुः) कलश में जैसे जल भरते हैं वैसे रेत=वीर्य वा ज्ञान-विज्ञान को बालक के प्रति सीचें। (ततो हमान) तब विशेष मान युक्त (उदियाय) उदीयमान (जातमृषिम्) जितेन्द्रिय ऋषि उत्पन्न होता है जिसे (वसिष्ठमाहुः) वसिष्ठ कहते हैं।

वशे तिष्ठन्ति मनो इन्द्रियाणि यस्य स वसिष्ठः।

जिसके मन और इन्द्रियाँ अपने वस में हों उसे वसिष्ठ कहते हैं।

जब ईश्वर कृपा से माता-पिता तथा आचार्य ये तीनों वेद विद्या में निष्णात तपस्वी होते हैं तभी इनसे उत्पन्न सन्तान ऋषि बनने योग्य होती है। ब्रह्मवित् के कुल में ही ब्रह्मवित् सन्तान उत्पन्न होती है। ब्रह्मवित् होने के लिए तप करना ही पड़ता है।

४. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

—ऋ० १०.१२५.५॥

अर्थात् मैं (ईश्वर) यह सत्य कहता हूँ—मेरी शिक्षा का ही देव और मनुष्य सब पालन करते हैं। मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसे ही बलवान्, ब्रह्मज्ञानी और ऋषि बनाकर उत्तम मेघा से युक्त कर देता हूँ।

I verily of myself announce of truth that is approved of the both, the divine ones and men; I make him for midable, a sage, a seer and wise whom soever I choose.

—ऋग्वेद भाष्य—डॉ० सत्य प्रकाश

सामवेद में 'ऋषिकर्त्ता'

५. **ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्त्रनीथः पदवीः कवीनाम्।**
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥

—साम० उ० ५(१) १(२); ऋ० ९.९६.१८॥

अर्थात् (यः) जो परमेश्वर (ऋषिमना) ऋषि मन वाला है, (ऋषिकृत्) अपने उपासकों को ऋषि बनाने वाला है, (स्वर्षा) सुखों का दाता, (सहस्त्रनीथः) सहस्त्रों का मार्ग दर्शक, (पदवी कवीनाम्) कवियों की प्रतिष्ठा है, (महिष) महान् है, (तृतीयम् धाम्) तीसरा धाम है अर्थात् लोक-प्रलोक से पृथक (सोम) सर्व प्रेरक सर्वव्यापक (सिषा सन्) सब प्रकार के सुख साधनों के प्रदान करने की इच्छा रखता हुआ (विराजम्) विराट जगत में (राजति) प्रकाशित हो रहा है वह (अनु) निरन्तर (ष्टुप्) स्तुति के योग्य है।

इस मन्त्र में ईश्वर को मनुष्यों का ऋषि कर्त्ता कहा गया है। कवियों की पदवी, सहस्त्रनीथ, स्वर्षा, तृतीय धाम, सोम, ऋषिमना, विराट आदि नाम उस परमेश्वर से भिन्न अन्य किसी के नहीं हो सकते। वह संसार का रचयिता, वेदों का प्रकाशक होने से ऋषिकर्त्ता होने में भी समर्थ है। उसकी कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति ऋषि नहीं हो सकता।

अथर्ववेद में 'ऋषिकर्त्ता'—

वेदवाणी का स्वामी परम पिता परमेश्वर जिस जीवात्मा के हृदय में अपने ज्ञान का प्रकाश करता है वही ऋषि बन जाता है। इस विषय में अथर्ववेद के प्रमाण दिखलाते हैं—

१. **अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।**
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

—अथर्व० ४.३०.३॥

अर्थात् मैं (परमेश्वर) स्वयं ही देव और मनुष्यों का प्रिय यह वचन बोल रहा हूँ कि मैं जिस की कामना करता हूँ, अथवा जो मेरी

परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं उस-उस को मैं तीक्ष्ण स्वभाव का ब्राह्मण, ऋषि व उत्तम मेघा बुद्धि वाला बना देता हूँ। यह मन्त्र किञ्चित् पाठ भेद से ऋ० १०.१२५.५ में भी आया है।

२. **अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उं।**
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम्॥

—अथर्व० ४.३९.९॥

अर्थात् सूर्यादि भौतिकाग्नि तथा विद्वानों के आत्मा में स्थित ज्ञान रूपी आध्यात्मिक अग्नि में प्रविष्ट होकर वह (अग्नि) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर सदा विराजमान हो रहा है। मैं बार-बार श्रद्धापूर्वक उसको प्रणाम करता हूँ। वह हम देवों के द्वारा सेवनीय (भाग) कर्म की (मा मिथुया) दुष्टता से रक्षा करे अर्थात् हमें दोषों से बचावे।

यह मन्त्र कुछ पाठ भेद से यजु० ५.४ में भी आया है।

३. **साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति।**
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थाने रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥

—अथर्व० ९.९.१६॥

अर्थात् छः ऋषि एक साथ उत्पन्न हुए तथा सातवाँ अकेला ही उत्पन्न हुआ। ये छः यम ऋषि एक देव से ही उत्पन्न हुए हैं। विभिन्न रूपों में उनके स्थान और विकास अपने-अपने विहित प्रयोजनानुसार प्रकाशित होते हैं। (विकार=रश्मियाँ)

❑❑

तृतीय अध्याय

ऋषियों का स्तुत्य

ऋग्वेद में 'ऋषि-स्तुत्य'—

ऋग्वेद (१.२४.१) में प्रश्न किया है—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥

अर्थात् निश्चय पूर्वक हम कौन से देव के किस सुन्दर अमृत नाम की स्तुति करें? इससे अगली ऋचा में स्वयं वेद भगवान उत्तर देते हैं—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारू देवस्य नाम॥

निश्चय ही हम अमृतों में प्रधान सुन्दर अग्नि देव के नाम की स्तुति करें।

जिस अग्नि देव (परमेश्वर) को वेद आदि ऋषि कह रहा है। वह मरणधर्मा मनुष्यों को भी अपनी कृपा से ऋषि बना देता है तब वह अग्नि देव ऋषियों का स्तुत्य क्यों न होगा। उसकी पूजा उपासना से ही तो ऋषि पद को प्राप्त हुए हैं। वह परमेश्वर ऋषियों द्वारा पूज्य है—इस आशय को दर्शाने वाली वेद में अनेकों ऋचायें हैं। उनमें से कुछ को यहाँ दिखाते हैं—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥ १॥

—ऋ० १.१.२॥

अर्थात् अग्निदेव, नवीन और प्राचीन सभी ऋषियों का पूजनीय है।

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥ २॥

—ऋ० १.८४.२॥

अर्थात् ऋषियों की स्तुति और मनुष्यों के यज्ञ कर्म उस महागुण सम्पन्न अत्यन्त बलवान, अहिंसक, दुःखों को नष्ट करने वाले इन्द्र को प्राप्त होते हैं।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये। ३॥

—ऋ० १.१०६.६॥

अर्थात् (कुत्सः ऋषिः) विद्यारूपी वज्र से अविद्या का छेदन करने वाला ऋषि (काटे) अध्यापनादिव्यवहार में (ऊतये) अपनी रक्षार्थ (इन्द्रं वृत्रहणं शचीपतिं) वृत्र का हनन करने वाले शचीपति इन्द्र को (अह्वत्) पुकारता है।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि। ४॥

—ऋ० १.४८.१४॥

अर्थात् हे उषा देवी! जो पूर्व ऋषि अपने उत्तम गुणों और रक्षादि के लिए तेरी बहुत प्रशंसा करते हैं। तू हमारे भी स्तोमों का श्रवण कीजिए।

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो.......। ५॥ —ऋ० ४.२०.५॥

अर्थात् जो परमेश्वर युवा नये ऋषियों द्वारा बहुत प्रशंसनीय है।

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। ६॥ —ऋ० ६.१६.१४॥

अर्थात् हे अग्ने! अथर्वा का पुत्र दध्यङ् ऋषि तेरी स्तुति करता है। तू मुझे भी अपनी विद्या से प्रकाशित कीजिए।

अथर्वा, मनु तथा दध्यङ् के विषय में स्कन्द स्वामी लिखता है—रातेभय आदित्य तेजोऽवस्था विशेषाः। अथर्वादय आदित्य सहचारिण ऋषयः। अर्थात् ये तीनों आदित्य के तेज की अवस्था विशेष हैं। ये आदित्य के सहचारी दिव्य ऋषि हैं।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः॥ ७॥ —ऋ० ८.६.१२॥

अर्थात् हे इन्द्र! जो नास्तिक जन तेरी स्तुति नहीं करते, किन्तु ऋषिजन जो तेरी स्तुति करते हैं। उन्हीं के समान तू मेरी स्तुतियों को भी

सुन और मुझे ऊपर उठा।

पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ ८॥

—ऋ० ८.८.८॥

अर्थात् (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् का पुत्र आपको वत्स के तुल्य अपनी स्तुतियों से बढाता है।

कण्व व कण्वतम के अर्थों को दर्शाने वाली एक ऋक् यहाँ लिखते हैं।

उषो ये ते यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह कण्व एषां कण्वतमो गृणाति नृणाम्॥

अर्थात् जो तपस्वी जन उषा काल में ही अपने मन को धर्म और दानादि कर्म में लगाते हैं; वे कण्व नाम से जाने जाते हैं। जो उन कण्वों में भी गुणों में आगे बढ़ जाते हैं, वे कण्वतम कहलाते हैं।

यहाँ तमप् प्रत्यय का प्रयोग स्पष्ट बतला रहा है कि कण्व किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। वह गुणवाची शब्द है।

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धनं घृतश्चुतम्॥ ९॥

—ऋ० ८.८.१५॥

अर्थात् जो ऋषि आप को अपनी वाणियों से वत्स के तुल्य बढाता है, उसके लिए आप हजारों प्रकार के धन तथा घी से टपकते हुए अन्नों को देते हो।

अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या३ ऋषयः समीधिरे।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये॥ १०॥

—ऋ० १०.१५०.४॥

अर्थात् अग्नि देव देवताओं का पुरोहित है। मनुष्य और ऋषिगण सब उस अग्नि की उपासना करते हैं। मैं (मृळीकं-धन सातये) जीवन के कल्याण और ऐश्वर्य लाभ के लिए उसी की प्रार्थना करता हूँ।

उपर्युक्त मन्त्रों में देव, ऋषि, मनुष्य सभी उस ईश्वर की स्तुति

करते हुए दिखलाये गये हैं। क्योंकि हमारे जीवन और जगत् का आदि कारण तो वह परमेश्वर ही है। जिसे ऋचाओं में अग्नि, इन्द्रादि नामों से स्मरण किया गया है।

यजुर्वेद में 'ऋषि-स्तुत्य'

वेदों का प्रकाशक, मर्त्यों को भी ऋषि बनाने वाला अनादि ऋषि-परमेश्वर मानवीय ऋषियों और देवों सभी का स्तुत्य है। यजुर्वेद के निम्न मन्त्र इन्हीं भावों के प्रकाशक हैं—

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाꣳस्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳरायस्पोषेण ग्मिषीय॥ १॥ —यजु० ३.१९॥

अर्थात् हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप ऋषियों की स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न होकर सूर्य के समान वर्चस के साथ आते हो। आप कृपा करके मुझे उत्तम लोक, दीर्घायु, सुवर्चस्, उत्तम पूजा और धन-ऐश्वर्य प्राप्त कराईये।

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ २॥ —यजु० ८.३५॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऋ० (१.८४.२) में भी आया है। भावार्थ यह है कि हे इन्द्र सोमया! आप अतिशय बलवान्, महागुणसम्पन्न, अहिंसक, किन्तु दुष्टों का मद चूर करने वाले हैं। आपको ऋषियों की स्तुतियाँ और मनुष्यों के यज्ञ प्राप्त होते हैं। इन्हीं शुभ कर्मों से तुझ षोडशी के हम समीप होते हैं। ये ही तेरे लक्षण हैं। ऐश्वर्य के लिए हम आप की शरण आये हैं।

अस्ताव्यग्निर्नराꣳसुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपाः।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम्॥ ३॥

—यजु० १२.२९॥

अर्थात् वैश्वानर अग्नि की ऋषियों द्वारा स्तुति की जाती है जो कि

सब लोगों को सुख देने वाला है। द्वेष भाव त्याग कर द्यावापृथिवी भी मानो उसकी उपासना कर रहे हैं। हे विश्वाधार! आप हमें धनैश्वर्य और उत्तम वीर पुरुषों को प्राप्त कराईए।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये॥ ४॥

—यजु० ३१.९॥

अर्थात् अनादिकाल से वर्तमान उस यज्ञ रूप पुरुष को देवता, साधक और ऋषिगण अपने जीवन यज्ञ से सींचते हैं। उसी की भक्ति और आज्ञा पालन से ये सब लोग अपने-अपने जीवन यज्ञ को पूर्ण और सार्थक करते हैं।

अयः सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे।
सत्यः सोऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥ ५॥

—यजु० ३३.८३॥

अर्थात् यह परमेश्वर सहस्रों ज्ञान-विज्ञानों का कर्त्ता समुद्र की भाँति अनन्त व्योम में व्याप्त हो रहा है। इसकी महिमा सदा शाश्वत है। ऋषिगण यज्ञ वेदियों पर विप्रों के मध्य उसकी शक्तियों का ही गुणगान करते हैं।

सामवेद में 'ऋषि-स्तुत्य'

वह महर्षि, परमऋषि, ऋषियों का जन्म दाता, मानवीय ऋषियों का स्तुत्य क्यों न होगा। क्योंकि वही तो सम्पूर्ण ज्ञान का उत्स है। ऋग्वेद और यजुर्वेद की भाँति सामवेद में भी बहुत से मन्त्र हैं जो यह दर्शाते हैं कि वह ईश्वर ऋषियों का स्तुत्य है अर्थात् ऋषिगण उस ब्रह्म की ही स्तुति करते हैं। इसी भाव के प्रत्यायक कुछ मन्त्र नीचे दर्शाते हैं—

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान्॥ १॥ —साम० पू० ४(१).३(७); ऋ० १०.७३.११॥

अर्थात् (वयः सुपर्णा) पक्षियों के समान, बोध-प्रतिबोध रूपी सुन्दर पंखों से ज्ञान लोक में ऊँची उड़ान भरने में समर्थ (प्रिय मेघा) उत्तम बुद्धि वाले (ऋषयः) ऋषिगण (नाघमाना) प्रार्थना करते हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर के (उपसेदुः) समीपस्थ होते हैं। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि (ध्वान्तम्) हमारे अविद्या अन्धकार को (अप ऊर्णूहि) दूर हटाईए। हमारी (चक्षुः) ज्ञान दृष्टि को (पूर्धि) पूर्ण कीजिए (निधया) जाल से (बद्धान् इव) बन्धे हुवों के समान (अस्मान्) हमको (मुमुग्धि) बन्धनों से मुक्त कर दीजिए।

परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत॥ २॥

—साम० पू० ६(२) ३(१२); ऋ० ९.१०३.३॥

अर्थात् (सप्त वाणी ऋषीणाम्) सप्त छन्दात्मक अथवा सात विभक्तियों युक्त ऋषियों की वाणी (अभि अनूषत) परमेश्वर की स्तुति करती है। तब उस (मधुश्चुतम्) भक्तिरस से भरे हुए (कोशम्) हृदय कोश को (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करते हुए (परि अर्षति) सब ओर से घेर कर अपना लेता है।

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥ ३॥

—साम० उ० ३(२), २३(३); ऋ० १.८४.२; यजु० ८.३५॥

अर्थात् यहाँ षोडशी परमेश्वर का प्रकरण चल रहा है। मन्त्रार्थ इस प्रकार है कि (अप्रतिधृष्ठ शवसम्) अपराभूत शक्तियों वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (ऋषीणाम सुष्टुति) ऋषियों की उत्तम प्रकार से की गई स्तुतियाँ तथा (मानुषाणाम् यज्ञम्) मनुष्यों के यज्ञ (हरि इत्) घोड़ों की भाँति चल कर (वहत) प्राप्त होते हैं।

ऋषिगण ज्ञान प्रधान होते हैं तथा मनुष्य कर्म प्रधान। ऋषिगण ज्ञान स्तुतियों से तथा मनुष्य यज्ञादि कर्म से उस ईश्वर को प्राप्त करते हैं।

ज्ञान और कर्म चेतना से ही उद्भूत होते हैं तथा उसी में लय हो जाते हैं। ज्ञान सूक्ष्म है तथा कर्म स्थूल। वस्तुतः कर्म ज्ञान का ही रूपान्तरण है। कोई भी कर्म ज्ञान से रहित नहीं है।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः॥४॥

—साम० उ० ७(१) ५(३); ऋ० ८.६.१२॥

अर्थात् हे इन्द्र! जो नास्तिक लोग आपकी स्तुति नहीं करते और जो तेरे भक्त ऋषिगण तेरी स्तुति करते हैं, इन दोनों के मध्य मैं भी आपकी स्तुति कर्त्ताओं में से हूँ। मेरे द्वारा अच्छे प्रकार स्तुति किया गया तू मुझे ऊपर उठा, मुझे महान बना।

अयं सहस्त्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥५॥

—साम०उ० ७(३), १८(२); ऋ० ८.३.४; यजुः० ३३.८३॥

अर्थात् यह सहस्त्रों प्रकार के बलों का स्वामी इन्द्र ऋषियों के द्वारा (सहःकृत) स्वजीवन का सम्बल बना लिया गया है। सहयोगी बना लिया है। इस इन्द्र की महिमा सत्य शाश्वत और महान् है। विप्रों के राज्य स्थल=यज्ञ वेदियों पर उस के (शव) ज्ञान और बलों का मैं भी (गृणे) स्तवन करता हूँ, गुणगान करता हूँ।

अथर्ववेद में 'ऋषि-स्तुत्य'

वह परम ऋषि परमेश्वर ज्ञानियों का स्तुत्य है इस विषय में अथर्ववेद के भी प्रमाण देखिये—

येन ऋषयो बलमद्योतयन्युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः॥१॥

—अथर्व० ४.२३.५॥

भावार्थ—जिस परमात्मदेव के सहाय से ऋषियों ने अपने बल को चमकाया। आसुरी भावों की माया को निज जीवन से पृथक किया।

तथा जिसके सहाय से (इन्द्र) जीवात्मा अपने व्यवहारों को (जिगाय) आत्म नियन्त्रित करता है। वह ज्ञान स्वरूप परमात्मा हमें पापों से छुड़ावे।

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमाना-स्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥२॥ —अथर्व० १७.१.१४॥

भावार्थ—हे इन्द्र! मोक्षसुख की कामना करते हुए ऋषिगण ज्ञान सत्र में तुझे अपने अध्ययन-अध्यापनादि कर्मों से बढाते हैं। अर्थात् तेरे ज्ञान का विस्तार करते हैं। हे सर्वव्यापक विष्णो! तेरे नाना प्रकार के पराक्रम हैं। यहाँ विविध रूपों वाले प्राणियों से हमें युक्त कीजिए तथा अपने अमृत भरे मोक्ष धाम में धारण कराइए।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।३॥

—अथर्व० १९.३५.१॥

अर्थात् इन्द्र का नाम लेकर ऋषियों ने जङ्गिड नाम की औषध को दिया। (और देवों ने उसे विष्कन्ध दूषण की प्रथम ओषध के रूप में प्रयोग किया।)

तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम्॥४॥

—अथर्व० २०.८८.१॥

भावार्थ—प्राचीन तत्व ज्ञानी ऋषियों ने ध्यान करते हुए (तं मन्द्रजिह्वम्) उस आनन्द की वर्षा करती हुई परमेश्वर की वाणी को सदा अपने अन्तःकरण में स्पष्टता से देखा।

अयं सहस्त्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥५॥

—अथर्व० २०.१०४.२; ऋ० ८.३.४; यजु० ३३.८३;
साम० ७(३) १८(१)

अर्थात् यह परमेश्वर जो समुद्रवत् अनन्त विस्तार वाला है। उसे सहस्त्रों ऋषियों ने अपना बलरूप सम्बल बना लिया है। उसकी महिमा

सत्य शाश्वत है। विप्रों के राज्य स्थल यज्ञ वेदियों पर मैं उसके बलों का बखान करता हूँ।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः॥ ६॥

—अथर्व० २०.११५.३; ऋ० ८.६.१२; साम० ७(१) ५(३)

अर्थात् हे इन्द्र! नास्तिक तेरी उपासना नहीं करते, किन्तु ऋषि लोग सदा ही तुम्हारा स्तवन करते हैं। मेरी उत्तम स्तुतियों से प्रसन्न होकर तू मुझे ऊपर उठाइए तथा उन्नति प्राप्त कराइए।

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन्॥ ७॥

—अथर्व० ११.१०.१०॥

अर्थात् बृहस्पति, अङ्गिरस तथा ब्रह्म की उपासना करने वाले ऋषियों ने असुरों के वध की कामना से त्रिसन्धि नामक दिव्य वज्र को धारण किया।

❑❑

चतुर्थ अध्याय

ऋषि भी तेरा पार नहीं पाते

उस जगदीश्वर के विद्या विज्ञान का निरन्तर ध्यान करने वाले ईश्वर के साक्षात् द्रष्टा ऋषिगण भी उस परमेश्वर की अनन्त और अपार महिमा का पार नहीं पा सकते। स्वयं वेद की ऋचा ही हमें इस रहस्य को बतला रही हैं।

ऋग्वेद में ईश्वर की अनन्त महिमा—

कर्दु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते॥ १॥

—ऋ० ८.३.१४॥

अर्थात् हे देवते! कौन ऋषि या विप्र तुझ इन्द्र की ऊहा कर सकता है? कितने ही स्तोता, योगाभ्यासी तेरी कामना करते हैं। किन्तु कोई विप्र ऋषि ही तुझे प्राप्त होता है।

क उ नु ते महिमानः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः॥ २॥

—ऋ० १०.५४.३॥

अर्थात् हम से पूर्व ऋषियों में कौन है जो तेरी महिमा के अन्त को पा सका है? अर्थात् कोई नहीं। तू ही हमारे माता-पिता को एक साथ अपने सामर्थ्य से पैदा करता है।

Who could among the sages before us comprehend the limits of your greatness?

(ऋग्वेदभाष्य—डॉ० सत्य प्रकाश सरस्वती)

अथर्ववेद में ईश्वर की अनन्त महिमा—

ऋषिगण उस परमात्मा का ध्यान करते हैं। उसकी उपासना करते हैं। उसका गुणगान करते हैं किन्तु वे भी उसका पार नहीं पाते। अथर्ववेद

का मन्त्र देखिए—

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः॥ ३॥

—अथर्व० २०.५०.२; ऋ० ८.३.१४॥

अर्थात् हे देव! कितने (ऋतयन्त) प्रयत्नशील (स्तुवन्तः) स्तुति करने वाले आप की कामना करते हैं किन्तु (कः विप्रः ऋषिः ओहते) कौन मेधावी ऋषि आपकी ऊहा करने में सक्षम हैं। हे इन्द्र मधवन्! कब-कब तुम स्तोताओं की स्तुतियों का श्रवण करके दर्शन देते हो। इसे हम नहीं जानते।

वह परमपिता परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अनादि, अनन्त, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी है। अपने उपासक को ऋषि बनाने वाला भी वही है। ऋषि बनने के बाद भी कोई जीवात्मा परमात्मा के समकक्ष नहीं हो सकता। मुक्त जीवात्माएँ भी परमात्मा की बराबरी नहीं कर सकती। सभी जीवात्माएँ अपनी-अपनी कामनाओं में आबद्ध हैं, किन्तु परमात्मा सदैव ही मुक्त है। ज्ञान में, बल में, ऐश्वर्य में उस परमात्मा के बराबर कोई जीवात्मा कभी नहीं हो सकता। मुक्तावस्था में भी जीवात्मा का ज्ञान बल एक सीमा तक ही विकास पाते हैं फिर भी वह परमात्मा नहीं हो सकता। सुख, शान्ति, आनन्द वह सब ईश्वर की व्यवस्था में ही भोगता है। इसलिए ऋषि बनकर भी कोई जीव उस परमात्मा का पार नहीं पा सकता।

❑❑

पञ्चम अध्याय

ऋषियों के विविध रूप

वेद में हम विविध रूपों वाले ऋषियों का उल्लेख पाते हैं। पूर्व ऋषि, नवीन ऋषि, देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, श्रुतऋर्षि, सप्तर्षि आदि भेद ऋर्षियों के सुनने में आते हैं। अग्नि ऋषि, इन्द्र ऋषि, पवमान ऋषि, कण्व ऋषि, अङ्गिरा ऋषि आदि भेद वेद संहिताओं में देखे जाते हैं।

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे॥ –ऋ० १०.६२.५॥

अर्थात् ऋषि विविध रूपों वाले होते हैं। वे गम्भीर प्रज्ञा और उत्तम कर्मों के करने वाले होते हैं। वे विविध भेदों वाले ऋषि सब के सब अङ्गिरा के पुत्र हैं। वे सब अग्नि से उत्पन्न हुए हैं।

पूर्व (ऋ० १.३१.१) में हम लिख आये हैं कि वह (अग्नि) जगत् का प्रकाशक, विद्या का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर ही प्रथम अङ्गिरा ऋषि है। उसी जगदीश्वर से सब देव, मनुष्य, पितर और ऋषि पैदा होते हैं। वह ऋषियों का कर्त्ता, जनिता होने से सब का पिता है। सब ऋषि उसके ही पुत्र हैं।

ऋग्वेद (१०.६२.४) में भी कहा है—

देवपुत्रा ऋषयः।

अर्थात् ऋषिगण उस परमात्मदेव के पुत्र हैं। विविध गुण, कर्म के कारण वे विविध रूपों वाले होते हैं।

ऋषियों के अनेकों भेद बतलाये जाते हैं। यथा—ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि आदि। सप्तर्षियों के भी कई रूप होते हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।

ऋग्वेद में 'सप्तर्षि'

वेदों में सप्तर्षि नाम से कहीं प्राणेन्द्रियों की चर्चा हुई तो कहीं नक्षत्रों के रूप में स्मरण किया गया है।

ऋग्वेद संहिता में 'सप्तर्षि' पद का हम सप्त प्राणेन्द्रियों के रूप में अनेकत्र प्रयोग देखते हैं।

कुछ स्थल नीचे द्रष्टव्य हैं—

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम्॥ १ ॥

—ऋ० ४.४२.८ ॥

अर्थात् वे सात ऋर्षि हमारे शरीर में दृढ़ता से बन्धे होकर पितृवत् हमारी रक्षा करते हैं। वे वृत्र को मार गिराने वाले, दस्युओं के भय दाता, अर्ध देव इन्द्र को प्राप्त होते हैं। (आध्यात्म में इन्द्र आत्मा है, आधि दैवत में सूर्य है। सूर्य दिन या रात में आधे-आधे जगत् को ही प्रकाशित करता है इसलिए उसे अर्धदेव कहते हैं। अर्ध शब्द अधूरे अर्थ को बताता है। आत्मा भी अर्ध देव है पूर्ण देव तो परमात्मा ही है।)

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः॥ २ ॥

—ऋ० १०.८२.२॥

अर्थात् जगत् में एक परम सत्ता है, जो विश्वकर्मा, विमना, विहाया, धाता, विधाता, परम तथा संदृक्=द्रष्टा आदि नामों से जानी जाती है। सब भूतों के कर्म आपः वा अन्न के साथ आनन्द प्राप्त करते हैं। सात ऋषि (रश्मियाँ अथवा इन्द्रियाँ) हैं उनसे परे एक आदित्य अथवा आत्मा है।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥ ३ ॥

—ऋ० १०.१०९.४; अथर्व० ५.१७.६॥

अर्थात् पूर्व में सात ऋषि तप में स्थित होकर देवों से कहने लगे कि जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की वाणी का अपमान होगा उस राष्ट्र में भारी विप्लव फैल जाएगा। वेद वाणी का तिरस्कार सारे जगत् के विनाश का कारण बन जाता है। सातों प्राण तपश्चर्या में रहकर वेदानुसार जीवन जीते हैं तभी जीवन का कल्याण होता है अन्यथा नहीं।

यजुर्वेद में सप्तर्षि विज्ञान रहस्य

सप्तर्षियों का उल्लेख ऋक् संहिता में भी आया है। अथर्ववेद में भी लगभग तीन दर्जन मन्त्रों में सप्तर्षियों का वर्णन मिलता है किन्तु यजुर्वेद संहिता में सप्तर्षि विज्ञान का रहस्य उद्घाटित हुआ है। यजुर्वेद के १३वें अध्याय में पांच मन्त्र हैं जहाँ सात ऋषियों की चर्चा है। जो निम्नलिखित हैं—

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः..... वसिष्ठऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ १ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो...........भरद्वाजऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ २ ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्व.......जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ ३ ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳसौवꣳ ....विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ ४॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या............विश्वकर्मऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥ ५॥

—यजुः० १३.५४-५८॥

इन मन्त्रों में प्राण को वसिष्ठ, मन को भरद्वाज, चक्षु को जमदग्नि, श्रोत्र को विश्वामित्र तथा वाणी को विश्वकर्मा ऋषि कहा है। कुल मिलाकर पाँच नामों का उल्लेख हुआ है। जाति की दृष्टि से चक्षु और श्रोत्र एक-एक हैं किन्तु संख्या की दृष्टि से वे दो-दो हैं। इसलिए ऋषियों की संख्या का परिगणन करने पर वे सात ही होते हैं। आगे यजु (३४.५५) में कहा है कि ये सात ऋषि शरीर में स्थित हैं—

सप्तऽऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोऽअस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

—यजु० ३४.५५॥

अर्थात् सात ऋषि शरीर में स्थित हैं। ये सातों प्रमाद रहित होकर शरीर की रक्षा करते हैं। सोते हुए व्यक्ति के आत्मा को ये सातों प्राप्त होते हैं अर्थात् आत्मा के आश्रय में रहते हैं। इस शरीर में जीवात्मा की रक्षा करने वाले स्वप्न रहित प्राणापान सदा जागते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य भी इसी विषय में लिखते हैं—

चक्षु वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत् पश्यति।

—शत० ८.१.२.३॥

अर्थात् जिस हेतु से जगत् को देखते हैं सो यह चक्षु ही जमदग्नि ऋषि है।

श्रोत्रं वै विश्वमित्र ऋषिः यदनेन सर्वतः शृणोति अथो यदस्यै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः॥

—शत० ८.१.२.३॥

अर्थात् श्रोत्र ही विश्वामित्र ऋषि है जो कि इससे सब ओर से सुना जाता है। अथवा इससे ही व्यक्ति सब का मित्र होता है। सब के दुःखों-सुखों की सुनने वाला सबका मित्र बन जाता है। इसी कारण श्रोत्र विश्वामित्र ऋषि है।

वाक् वै विश्वकर्मर्षिर्वाचा हीदँ सर्वं कृतम्॥

—शत० ८.१.२.९॥

अर्थात् वाक् विश्वकर्मा ऋषि है, क्योंकि वाणी के द्वारा ही सारा व्यापार होता है।

मनो वै भरद्वाज ऋषिः॥

—शत० ८.१.१.३॥

अर्थात् मन भरद्वाज ऋषि है। मन के द्वारा ही सारा ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः॥

—शत० ८.१.१.६॥

अर्थात् प्राण वसिष्ठ ऋषि है। यह सारा संसार प्राण के वशीभूत है। सब को अपने वस में रखने के कारण प्राण वसिष्ठ है।

एकयास्तुवत..................सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥ ७॥

—यजु० १४.२८॥

अर्थात् धारण पोषण करने वाला एक परमात्मा सब का स्वामी है। उसी ने सात ऋषियों को उत्पन्न किया। इन सातों के द्वारा उसकी स्तुति करो।

विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् परऽएकमाहुः॥ ८॥

—यजु० १७.२६॥

अर्थात् सब जगत् को बनाने वाला, धाता विधाता केवल मात्र एक ही है। जिस शरीर में सात ऋषियों को प्राप्त होकर जीवात्मा इच्छानुसार आनन्द को प्राप्त करते हैं और ईश्वर उन्हें इष्ट सुखों को देता है उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिए।

सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा॥ ९॥

—यजु० १७.७९॥

अर्थात् हे अग्ने! तेरी सात समिधाएँ हैं। सात जिह्वा हैं। सात ऋषि हैं। सात प्रिय धाम, सात होता हैं और सात योनी हैं। सात प्रकार से तेरी पूजा की जाती है। तू घी से पूर्णता को प्राप्त करता है।

सहस्तोमाः सहच्छन्दसऽआवृतः सहप्रमाऽऋषयः सप्त दैव्याः। पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीराऽअन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥ १०॥

—यजु० ३४.४९॥

अर्थात् जो रागद्वेषादि दोषों को छोड़कर आपस में प्रीति रखने वाले, ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान पूर्वक वेदों के अध्ययन से सत्य-असत्य का निश्चय कर असत्य को त्याग के सत्य का ग्रहण करते हैं। वे सप्त ऋषि

सुशिक्षित सारथी के समान अभीष्ट धर्म युक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते हैं और वे ही ऋषि कहलाते हैं।

अथर्ववेद में सप्तर्षियों का वर्णन

अथर्ववेद संहिता में जिन मन्त्रों में सप्तर्षियों का उल्लेख मिलता है, हम उन्हें यहाँ नीचे दिखलाते हैं—

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः॥ १॥

—अथर्व० ४.११.९॥

भावार्थ—जो अनडुह के कभी क्षीण न होने वाले सात दोहों को जानता है, वह उत्तम सन्तान और लोक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता है। सप्तऋषि अनडुह के उन सात दोहों को जानते हैं।

यहाँ तीन प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होते हैं— (१) यह अनडुह कौन है? (२) उस अनडुह के सात दोहे कौन से हैं? (३) सप्त ऋषि कौन-कौन हैं?

प्रथम और द्वितीय प्रश्नों के उत्तर हमें सम्बद्ध सूक्त में ही मिल जाते हैं। सूक्त में कहा गया है कि अनड्वान् ने पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ-लोक और छः दिशाओं को धारण किया हुआ है। वह सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त हो रहा है। इस जगत् रूपी शकट (गाड़ी) को ले चलने वाला वह परमात्मा ही अनडुह कहलाता है।

पय, पर्जन्य मरूत आदि उस अनडुह के सात दोहे हैं। जो क्रमश इस प्रकार हैं—(१) सुकृत, (२) दक्षिणा, (३) यज्ञ, (४) मरूत, (५) पर्जण्य, (६) वर्षा और (७) अन्न। अन्न वर्षा के अधीन है, वर्षा पर्जण्य के अधीन, पर्जण्य मरूताधीन, मरूत यज्ञ के अधीन, यज्ञ दक्षिणाधीन, दक्षिणा सुकृत या श्रद्धा के अधीन है। पुराकाल से ही ऋषिगण इन सात दोहों को जानते थे। इसलिए समाज में यज्ञों के प्रचलन के कारण अन्न का संकट उपस्थित नहीं होता था। सभी लोग याज्ञिक थे। श्रद्धा से दक्षिणा देते थे।

तीसरा प्रश्न है कि सात ऋषि कौन है? उत्तर स्पष्ट है कि जो परमात्मा की सृष्टि और उस की वेद विद्या के सूक्ष्म द्रष्टा हैं, वे ही सात ऋषि हैं। सात छन्दों को भी सात ऋषि कहा गया है। वे छन्द ही वेद विद्या का साक्षात् कराते हैं। ऐतिहासिकों की दृष्टि में सप्तर्षियों के नाम हैं—

विश्वामित्रो जमदग्नि भरद्वाज्योऽथ गौतमः।
अत्रि वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः॥

—बौधायन श्रोत० ५४.१२॥

वेदों में इतिहास नहीं है। फिर ये विश्वामित्रादि कौन हैं? ये सप्तर्षि वे ही हैं जिनका यजुर्वेद संहिता में वर्णन किया गया है। आध्यात्मिक पक्ष में वे हमारी चक्षु, श्रौत्र, वागादि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्॥ २॥

—अथर्व० ५.१७.६॥

भावार्थ—पूर्वकाल के सप्तर्षि, जो तप से आपूत थे। ब्रह्म जाया के विषय में बोले कि यह ब्रह्मजाया (ब्राह्मण को उत्पन्न करने वाली विद्या) जो किसी शूद्र-कुपात्र के पास चली जाती है, तो जगत् में महान् विनाश का ताँडव रच देती है।

विद्या किसी कुपात्र के हाथ में जाएगी तो वह भयँकर ही होगी। जिससे जगत् का विनाश हो जाएगा। जैसे वर्तमान समय में विज्ञान ने प्रगति तो की है किन्तु कुपात्रों के हाथों में जाकर उसने मानव जाति के विनाशकारी आण्विक हथियारों का सर्जन किया है। जो पूरी पृथिवी के लिए भयावह और विनाश का कारण बना हुआ है। न जाने कब और कहाँ वह अपनी लीला कर दिखाये। वेद की शैली है। किसी बात की उत्कृष्टता दिखाने के लिए उसे सात ऋषियों द्वारा कहलवाया है। अर्थात् इस विषय में सातों ऋषि एक मत हैं कि विद्या पात्र को ही दी जानी चाहिए। यदि कुपात्रों के हाथों में आण्विक हथियार न जाते तो आज

दुनिया में आतंकवाद का बोलबाला न होता। आज के युग में हर मूर्ख आदमी के हाथ में हथियार है। ऐसी परिस्थिति में मूर्ख तो स्वयं मौत से खेल ही रहा है किन्तु साथ में निर्दोष लोगों को भी बलि का बकरा बनाया जा रहा है। मन्त्र के **'तपसा ये निषेदुः'** पद ऋषियों के महान जीवन पर प्रकाश डाल रहे हैं। बिना तप के कोई भी व्यक्ति ऋषि-पद को प्राप्त नहीं कर सकता। विद्या ही तपोनिष्ठ ऋषियों की निधि होती है। वे जो बोलते हैं, सदा सत्य ही बोलते हैं। उनके वचनों की उपेक्षा करना भयँकर विनाश का हेतु बन जाता है। आज के युग में विद्या के लिए पात्र-कुपात्र को विचार किये बिना सोने-चाँदी के सिक्कों में बेचा जा रहा है। इसी कारण विश्व युद्ध का खतरा सम्पूर्ण मानव जाति के सिर पर मण्डरा रहा है। कैसी अनमोल शिक्षा मन्त्र के अन्दर भरी हुई हैं, लेकिन (आज का) संसार इससे अनभिज्ञ है।

सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु॥ ३॥

—अथर्व० ६.४०.१॥

भावार्थ—सप्त ऋषियों की हवियों से हमें अभय प्राप्त हो।

यहाँ पर विचारणीय यह है कि सप्त ऋषियों की हवियाँ क्या हैं? मन्त्र के अन्दर कहा गया है कि द्यौ-पृथिवी हमारे लिए अभय देने वाले हों। सूर्य चन्द्र हमारा कल्याण करें। विस्तृत आकाश हमें अभय प्रदान करे। प्रकरण पर विचार करने से विदित होता है कि जहाँ भूगोल खगोल का वर्णन है उस प्रकरण में आकाशस्थ सप्तर्षियों को ही हमें विषय बनाना चाहिए। इन नक्षणों की प्रकाश रश्मियाँ ही इन ऋषियों की हवियाँ हैं। ये रश्मियाँ हमारे जीवन के लिए कल्याणकारी, अभ्यदायिनी हों—यही मन्त्र का भाव है। वेद के सात छन्द भी हमें परमेश्वरीय ज्ञान कराके अभय प्रदान करते हैं।

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्व स्तनूजाः। अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः॥ ४॥

—अथर्व० ६.४१.३॥

जो हमारे शरीर के साथ ही पैदा होते हैं और हमारे शरीर की रक्षा करते हैं। वे दिव्यगुणयुक्त सप्त ऋषि हमारा त्याग न करें। हम दीर्घायु को प्राप्त करें। यहाँ सप्तर्षि से सप्तप्राणों की ओर संकेत है।

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो ऽवहाय परा गात्।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु॥ ५॥

—अथर्व० ७.५३.४॥

यह दीर्घायुष्य सूक्त है। मन्त्र का भाव यह है कि इस शरीर को प्राण-अपान न छोडें। मैं इसे सप्त ऋषियों को देता हूँ। वे इसे जरावस्था तक सुखपूर्वक ले चलें।

सायण भाष्य में पाठ है—

अत्र ऋषि शब्देन प्राणा उच्यन्ते।
सप्त संख्याकेभ्यः प्राणेभ्यः। सप्त वै शीर्षण्या प्राणाः।

—तै०ब्रा० १.२.३.३॥

मन्त्र के पूर्वार्ध में प्राण और अपान का ग्रहण किया ही गया है। पुनः सप्तर्षि के अर्थ में प्राणापान का ग्रहण पुनरुक्ति दोष कहलाएगा। अतः सप्तर्षि का अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि करना अधिक युक्ति परक और प्रकरणानुकूल प्रतीत होता है। प्राणापान के उत्तमता से कार्य करने पर इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि सब स्वस्थ होने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च। विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः॥ ६॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्। यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन्॥ ७॥

—अथर्व० ८.९.७-८॥

प्रथम मन्त्र में छः ऋषि एकत्रित होकर कश्यप ऋषि से प्रश्न करते हैं कि हे कश्यप! आप हमारी शङ्काओं का समाधान करने में समर्थ हैं। अतः हम आप ही से पूछते हैं कि जिस विराट् को ब्राह्मण का पिता

कहते हैं उसका हम मित्रों के लिए यथार्थ उपदेश कीजिए। दूसरे मन्त्र में कश्यप उत्तर देते हैं कि हे ऋषियो! जिसके अवतरण से यज्ञों का अवतरण हो जाता है। जिसकी स्थिति में यज्ञ स्थित हैं। जिसकी प्रेरणा और व्रत से बन्धा हुआ यह जगत् गतिमान है। वह पूजनीय विराट् परम व्योम में स्थित है। ब्राह्मण नाम जीवात्मा का है। परमात्मा उसका पिता है। इस बात को मन्त्र में आख्यान का रूप देकर प्रस्तुत किया गया है। कश्यप कौन हैं? **कश्यप इति पश्यक**। तत्व ज्ञान का साक्षात् कर लेने वाली बुद्धि ही कश्यप है। विषयों में विचरने वाली मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों को बुद्धि ही मार्ग दर्शन कराती है। परमात्मा का नाम विराट् है।

सोदक्रामत्सा सप्तऋषीनागच्छत्तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति॥
तां बृहस्पतिराङ्गिरसो ऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाधोक्॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति।
ब्रह्मवर्चस्यु ऽपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ ८॥

—अथर्व० ८.१०(४).१३,१५,१६॥

भावार्थ—वह विराट् शक्ति उठ कर सात ऋषियों के पास गई। ऋषियों ने उसे ब्रह्मण्वति कह कर पुकारा। हे ब्रह्मण्वति आईये। बृहस्पति आङ्गिरस ने उस विराट् को दुहा। उससे ब्रह्म और तप की प्राप्ति हुई। उस ब्रह्म (ज्ञान) और तप के आश्रय पर ऋषिगण अपना जीवन निर्वाह करते हैं। जो इस सत्य से अवगत हो जाता है वह ब्रह्मवर्चस्वी होकर जीवन निर्वाह करने लगता है। यहाँ परमात्मा की इस प्रकृति को विराट् नाम दिया है। क्योंकि इसी के द्वारा परमात्मा विविध रूपों में प्रकाशित होता है।

इस सूक्त में ऊपर कहा गया है कि जब आरम्भ में विराट् शक्ति प्रकट हुई तो सब भयभीत हो गये कि यह विराट ही अब सब पर छा जाएगी। वह विराट गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभा, समिति

और अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रविष्ट हो गई। देवों और मनुष्यों ने उसे बड़े सम्मानपूर्वक बुलाया। इन्द्र ने उसे वत्स सहित गायत्री रूपी रस्सी से बाँध दिया। और फिर उसका दोहन किया। तत्पश्चात् वह पितरों, देवों, मनुष्यों और ऋषियों के पास गई। पितरों ने उससे स्वधा को, देवों ने ऊर्जा को, मनुष्यों ने कृषि और धान को, ऋषियों ने ब्रह्म और तप को, असुरों ने माया को, गन्धर्वों ने गन्ध को, सर्पों ने विष को प्राप्त किया। जिस-जिस ने जो-जो भी कामना की वह-वह उसकी पूर्ण होती गई। यही जगत् का नियम है जो जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे प्राप्त हो जाती है। **यो यत्कामयते सो अभिसम्पद्यते**। इस बात को यहाँ आख्यान का रूप देकर समझाया गया है। यह पुरुष काममय ही है। सम्पूर्ण जगत् कामना की धूरी पर ही घूम रहा है। निष्काम पुरुष जगत् के बन्धनों में नहीं बन्धता। वह मुक्त हो जाता है।

सप्तऋषीनभ्यावर्ते।
ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्रह्मवर्चसम्॥ ९॥

—अथर्व० १०.५.३९॥

मैं सप्त ऋषियों के अभिमुख होकर वर्तता हूँ। वे मुझे धन और ब्रह्मवर्चस् प्रदान करें।

इस सूक्त में कहा गया है कि मैं दक्षिण दिशा के सूर्य, ज्योतिष्मती दिशाओं, ब्रह्म और ब्राह्मण के अनुकूल वर्तता हूँ। वे सब मुझे द्रविण और ब्रह्मवर्चस् प्राप्त करावें। ब्रह्म अर्थात् परमात्मा, ब्राह्मण उस परमात्मा को जानने वाले तथा ऋषि-वेदार्थ के साक्षात् द्रष्टा, ये तीनों चेतन सत्ताएँ हैं। उन्नति के अभिलाषी जन ज्योतिष्मान् पथों का अनुगमन करते हैं। भौतिक रूप में सूर्य तथा चन्द्रादि की ज्योति तथाच आध्यात्मिक रूप में ब्रह्म, ब्राह्मण और ऋषियों के विज्ञान हमारे जीवन पथ को आलोकित करते हैं। उन ज्योतियों के आलोक में जीवन-पथ पर आगे बढ़ने वाले पथिक द्रविण और ब्रह्मवर्चस् को निश्चय ही प्राप्त कर लेते हैं।

सूक्त का अभिधेय पुरुष वीर रस से ओत-प्रोत है। वह अकेला ही

शत्रु की सेना का मुकाबला करने में समर्थ हैं। वह शत्रु के युवा पुत्रों के वर्चस्, तेज, प्राण और आयु को क्षीण करता हुआ स्वयं क्षत्रीय की मर्यादाओं से पतित न हो जाए इसलिए ब्रह्म, ब्राह्मण, ऋषि और सूर्य तथा ज्योतिष्मती दिशाओं के अनुकूल होकर वर्तता है। विनम्र होकर उनसे प्रार्थना करता है कि वे उसे धन, बल और ऐश्वर्य प्रदान करें। कितना ऊँचा आदर्श है—वेद के पुरोधा का। क्या कहीं आज के संसार में किसी देश के सैनिकों का ऐसा आदर्श देखने को मिलेगा?

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥ १०॥

—अथर्व० १०.८.९॥

भावार्थ—नीचे को मुख और ऊपर को पैंदी वाला एक पात्र है। उसमें विश्व का सम्पूर्ण यश भरा हुआ है। यहाँ सात ऋषि एक साथ बैठे हैं, वे इस महान् (आत्मा) के रक्षक हैं।

यह नीचे को मुख और ऊपर को पैंदी वाला पात्र मानव शरीर का शिर है। इसके अन्दर स्थित ज्ञान राशि में विश्व का समग्र यश भरा हुआ है, यहीं ज्ञानेन्द्रियाँ का स्थान है। जो इस शरीर की रक्षा कर रही हैं।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह॥ ११॥

—अथर्व० ११.१.१॥

भावार्थ— हे अग्ने! आप प्रज्वलित होईये। अदिति पुत्र की कामना करती हुई ब्रह्मोदन चाहती है। प्रजा के साथ मिलकर सप्त ऋषि तेरा मन्थन करें।

इस सूक्त के तीसरे मन्त्र में कहा है कि हे जातवेद! महान् पराक्रम के हेतु ब्रह्मोदन को पकाने के लिए तू प्रकट हुआ है। सप्त ऋषियों ने तुझे जन्म दिया है। इस अदिति को तू रयि तथा उत्तम पुत्र प्रदान कर। १४वें मन्त्र में ऋषि स्रुवे को अदिति के हाथ में देते हैं। अदिति स्रुवें में ओदन को लेकर वेदी के मध्य में आहुति देती है। फिर यज्ञ शेष देवों, ब्राह्मणों

और ऋषियों को परोसा जाता है। इस यज्ञ शेष में अनार्ष लोगों का भाग नहीं है। अग्नि, मरूत और सब देव इस ओदन की रक्षा करते हैं।

इस ब्रह्मौदन सूक्त में अदिति के ओदन पाक की यह आख्यायिका मानव जीवन के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालती है। तपसोधिजात ऋषि इस पृथिवी पर अग्नि मन्थन कर यज्ञ रचावें। तथा यज्ञ शेष में से सभी को अपने-अपने भाग प्राप्त होवें। यह शिक्षा यहाँ दी गई है। सप्त ऋषियों के भूतकृत और तपसोधिजात विशेषण हैं। भूतकृत का अर्थ है—यथार्थ क्रिया के करने वाले। जो विशुद्ध ज्ञान से पूर्ण हों ऐसे ऋषियों के कर्मों का सत्य से आपूरित होना स्वाभाविक है।

इसी सूक्त के ३५वें मन्त्र में कहा है कि हे वृषभ! तपसोधिजात ऋषियों और ऋषि पुत्रों को तू स्वर्ग लोक में स्थापित कर।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम्॥ १२॥
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः
प्राणापानाः॥ १३॥ —अथर्व० ११.३(१).१,२॥

इस सूक्त में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ओदन से उपमा दी गई है। उस ओदन की भी एक जीवधारी के रूप में कल्पना करते हुये बृहस्पति को उसका सिर, ब्रह्म को मुख, द्यावापृथिवी को श्रोत्र, सूर्य चन्द्रमा को आँखें तथा सप्त-ऋषियों को प्राणापान कहा है। प्रकरण से पता लगता है कि सप्त ऋषि, यहां सप्त तारामण्डल ही हैं। इन्हीं को प्राणापान स्थानी कहा गया है।

इस सूक्त में मन्त्र (३२) में कहा है—

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह॥ १४॥

—अथर्व० ११.३(१).३२॥

भावार्थ—पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन जिस सिर से किया है यदि उससे भिन्न से तुम यदि इसका प्राशन करोगे तो ज्येष्ठ अंग से हीन होकर तुम्हारी प्रजा मर जाएगी।

यहाँ '**पूर्व ऋषय:**' वेद विज्ञान के द्रष्टा **आदि सृष्टि** के ऋषियों से अभिप्राय है। उन आदि सृष्टि के ऋषियों ने अपने ज्ञान और तप से यह जान लिया था कि सृष्टि का उपयोग कैसे करना चाहिए। उसके विपरीत जो भी उसका दुरूपयोग करेगा, उसका अनिष्ट होना अवश्यम्भावी है। आर्षोपदिष्ट मान-मर्यादाओं के अनुरूप जीवन जीना सभी शुभ फलों का देने वाला है। एडस् जैसी जान लेवा बीमारियाँ इस युग में मानव के असयमित जीवन जीने का परिणाम हैं। मानव ने ऋषियों की ब्रह्मचर्य जैसी मान मर्यादाओं को भुला दिया है। संयम को तो आज की शिक्षा में कहीं स्थान ही नहीं है। मिथुन राशि में उत्पन्न हुआ यह मानव मानों कि मैथुन के लिए ही उत्पन्न हुआ हो। कीट-पतङ्गों से भी बदतर यह जीवन जी रहा है। भारत सरकार में उच्च पदों पर विराजमान मन्त्री और अधिकारी "छोटा परिवार सुखी परिवार" का नारा तो देते हैं किन्तु संयम की कहीं कोई चर्चा नहीं है।

गृहस्थ आश्रम शेष सभी आश्रमों तथा चारों वर्णों की धूरी है। उसके उत्थान के लिए तपस्वी गृहस्थ को कृत्रिम संसाधनों की आवश्यकता नहीं होती। जब कोई गृहस्थ आत्म संयम में इतना पतित हो जाए कि उसे संतति नियमन के लिए कृत्रिम साधनों का अवलम्बन लेना पड़े तो यह गृहस्थ के पतन की पराकाष्ठा होगी। आज के समाज में न ब्रह्मचर्य आश्रम रह गया है और न ही वानप्रस्थ और सन्यास। केवल और केवल गृहस्थ आश्रम दिखलायी पड़ता है। गर्भकाल से ही भ्रूण को काम के दूषित संस्कारों से विकृत किया जाने लगता है। आश्रमों का सांकर्य मानवता के विनाश का संकेतक है। उत्तम ब्रह्मचर्य, उत्तम वानप्रस्थ और उत्तम सन्यास के मध्य में गृहस्थ की उत्तमता सुरक्षित रहती है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास यदि पतित होते हैं, वे अपनी मान मर्यादाओं को खो देते हैं तो गृहस्थ भी सुरक्षित नहीं रह सकता। ऋषियों के इस विज्ञान को आज के मानव ने आँखों से ओझल कर दिया है। इसलिए नित्य नयी-नयी व्याधियाँ और समस्याएँ जन्म ले

रही हैं। जो लाइलाज हैं। मानव जाति की सुरक्षा का एकमात्र उपाय ऋषियों की शिक्षाओं का अनुगमन ही है। अन्य कुछ नहीं।

इसी ग्यारहवें काण्ड के छठे सूक्त में पाप मोचन की प्रार्थना की गई है। सभी देव मुझे पाप से छुडावें। सप्त ऋषि भी मेरी पाप से रक्षा करें।

कल्पारम्भ में जब सृष्टि रचना होती है तो पृथिवी पर वेदों का प्रकाश करने के लिए परमेश्वर ऋषियों को जन्म देता है। वे तप: पूत ऋषि वेदों का स्तवन करते हैं। वेदों का अध्ययन अध्यापन करने वाला व्यक्ति ऋषियों के ऋण से उर्ऋण होता है। विद्या में भुरिश्रमा पुरुष ऋषियों का प्रिय पात्र बन जाता है।

अथर्व० १५वें काण्ड में सप्त ऋषियों का उल्लेख है—

स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत्॥ १५॥
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्य
चलत्॥ १६॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति॥ १७॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि॥ १८॥

—अथर्व० १५.२.२१, २२, २३, २४॥

भावार्थ—वह व्रात्य उठा और उत्तर दिशा की ओर चला। उसके साथ-साथ श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और सोम राजा भी चले।

जो व्यक्ति इस विद्वान् व्रात्य का अपलाप करता है, वह मानो श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और सोम राजा की हत्या करता है।

यह उत्तर दिशा व्रात्य का, श्यैत का, नौधस का, सप्तर्षियों का तथा सोम राजा का प्रियधाम है।

यहाँ यह विचारणीय है कि यह व्रात्य तथा श्यैत आदि कौन हैं?

अथर्ववेद के इसी काण्ड में १८वें सूक्त में व्रात्य के स्वरूप पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। सूर्य-चन्द्रमा व्रात्य की दो आँखें हैं। अग्नि और पवमान सोम उसके दो कान हैं। अहोरात्र नासिका है। दिति-अदिति उसके शीर्ष कपाल हैं और संवत्सर उसका सिर है।

अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, पवमान, आपः, पशवः और प्रजा उसके सात प्राण हैं। पौर्णमासी, अष्टका, अमावस्था, श्रद्धा, दीक्षा, यज्ञ, और दक्षिणा उसके सात अपान हैं। भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, नक्षत्र, ऋतवें, आर्तवें और सम्वत्सर ये सात उस व्रात्य के व्यान हैं।

भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, नक्षत्र आदि सात व्यान जिस देव पुरुष के उदर में स्थित होकर रसों का संचार कर रहे हों वह देव पुरुष परमेश्वर से भिन्न कौन हो सकता है ? यह एक रूपक अलङ्कार है। इस रूपक अलङ्कार के द्वारा परमेश्वर की महत्ता का वर्णन किया गया है। श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और सोम आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं। जो उत्तर दिशा में अवस्थित हैं। सप्तर्षियों से अभिप्राय सात नक्षत्रों से हैं। उनकी रश्मियाँ ही उनके द्वारा दी गई आहुतियाँ हैं। पृथिवी के वायुमण्डल में प्रवेश से पूर्व वे सोम (चन्द्रमा) के प्रकाश में से होकर गुजरती हैं। चन्द्रमा के प्रभाव से वे रश्मियाँ पृथिवी के प्राणधारियों के लिए जीवन दायिनी हो जाती हैं। इसीलिए कहा गया है कि सोम राजा सप्तर्षियों की आहुतियों का भक्षण करता है। ये विज्ञान के सूत्र वेद के अन्दर निहित हैं।

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु॥ १९ ॥
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु।
ये माऽघायवं उदीच्या दिशो ऽभिदासात्॥ २० ॥

—अथर्व० १९.१७.७; १९.१८.७॥

भावार्थ—विश्वकर्मा सप्तर्षियों के द्वारा मेरी उत्तर दिशा की ओर से रक्षा करें।

जो दुष्टात्मा उत्तर दिशा से मुझ पर आक्रमण करें तो विश्वकर्मा सप्तर्षियों के द्वारा उन्हें नष्ट करा दें।

इस जगत् में विश्वकर्मा की कोई भी कृति अनर्थक नहीं है। सप्तर्षियों की रश्मियाँ हमारे जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। ये रश्मियाँ पृथिवी के वायुमण्डल में प्रवेश करके भौतिक और रासायनिक परिवर्तन पैदा करती हैं। तथा जीवन के लिए उपयोगी परिस्थितियों का निर्माण करती हैं। वेद इन नक्षत्रों की उपयोगिता पर प्रकाश डाल रहा है। जिससे आज का वैज्ञानिक अभी तक अनभिज्ञ है।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनम्॥ २१ ॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु॥ २२ ॥

—अथर्व० १९.९.१२, १३॥

भावार्थ—महान् परमेश्वर प्रजा का रक्षक, सबका धारणकर्त्ता, उसके बनाये लोक और वेद, सप्तर्षि तथा अग्नि आदि सब मेरे लिए कल्याणमय पथ का निर्माण करें।

इस लोक में सप्तषियों ने जिन-जिन कल्याणकारी वचनों का उपदेश किया है वे सब मुझे शान्ति और अभय प्रदान करें।

निश्चय ही जीवन में शान्ति और अभय की कामना ऋषियों की शरण में जाने से ही पूरी हो सकती है।

इस प्रकार हमने देखा कि अथर्ववेद संहिता में सप्तर्षि पद का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। कहीं ज्ञानेन्द्रियों के रूप में, कहीं प्राणों के रूप में, कहीं विद्वानों के और कहीं नक्षत्र मण्डल के लिए तो कहीं सात प्रकार की प्रकाश रश्मियों के लिये। प्रकरणानुसार विद्वानों को उन-उन अर्थों को ग्रहण करना चाहिए।

वैदिक साहित्य में सात संख्या का बहुत महत्व है। यथा—

१. सप्तर्षि—	विश्वामित्र, जमदाग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप।
२. सप्त छन्द—	गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति,

त्रिष्टुप्, जगती।

३. सप्त लोक— तल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल, पातल।

४. सप्त मर्यादा— चोरी, व्याभिचार, ब्रह्म हत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, दुष्कर्म, असत्य भाषण।

५. सप्तपदी— विवाह संस्कार की मर्यादित प्रतिज्ञा।

६. सप्तपदः सखा— परमेश्वर।

७. सप्तदेव— अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, वरूण, इन्द्र, विश्वेदेवा।

८. सप्त मधु— ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ, अश्व, अन्न, प्राण, शहद्।

९. सप्त दोह— श्रद्धा, दक्षिणा, यज्ञ, मरूत, पर्जन्य, वर्षा अन्न।

१०. सप्त साम— स्थन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज्, शक्कर, रैवत्, नौधस्।

११. सप्त विभक्ति— प्रथमा, द्वितीयादि।

१२. सप्त कारक— कर्त्ता, कर्म, करणादि।

१३. सप्त सूर्यरश्मि— बैंगनी, जम्बूकी, नीली, हरि, पीली, नारङ्गी, लाल।

१४. सप्ताग्नि जिह्वा— काली, कराली आदि।

१५. सात समुद्र— हिन्दमहासागर, प्रशान्त महासागर आदि।

१६. सप्त व्याहृति— भु, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।

१७. सप्त द्वीपा वसुमति—एशियादि महाद्वीप।

१८. सप्तकाल विभाग—चान्द्रमास, सौरमास, बृहस्पति मास आदि।

१९. सप्तस्वर्ग— (ऐ०ब्रा०) में द्रष्टव्य।

२०. सप्तभेदा बुद्धि— (योगदर्शन) में द्रष्टव्य।

२१. सप्त होता— दो चक्षु, दो श्रोत्र, दो प्राण, एक वाक्।

२२. सप्तान्न आदि— अन्न, दुग्ध, हुत, प्रहुत, वाक्, प्राण, मन।

२३. सप्त समिधा— अश्वत्थ, उदुम्बर, पलाश, शमी, विकङ्कतः, अशनि, पद्मपत्र।

सप्तर्षियों को आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक रूप में तीन भेदों में देखा जाता है।

आध्यात्मिक सप्तर्षि—ज्ञानेन्द्रियाँ या प्राण हैं।

आधिदैविक सप्तर्षि—अगस्तादि सात प्रसिद्ध ऋषि हैं।

तथा आधिभौतिक सप्तर्षि—सात आकाशीय सितारे हैं।

❑❑

षष्ठ अध्याय

ऋषियों द्वारा रक्षित वेद-विज्ञान के स्वाध्याय का फल

वेद ही सृष्टि का आदि काव्य है। परमेश्वर आदि कवि हैं। परमेश्वर के काव्य का स्वाध्याय ही हमें परमेश्वर का परिचय देता है। वेद के स्वाध्याय से एक ओर शास्त्र रक्षा होती है और दूसरी ओर हमें जीवन दर्शन मिलता है। जीवन जीने का ढंग समझ में आता है। जब व्यक्ति को जीवन की राह मिल जाती है और जीवन जीने का ढंग आ जाता है, तो जीवन शान्ति और आनन्द से भर जाता है। इसी विषय को स्वयं वेद अपने शब्दों में कह रहा है, सुनिये—

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृत रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ १॥
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृत रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ २॥

—ऋ० ९.६७.३१-३२॥

जो ऋषियों के हृदय में प्रकाशित पवित्र वेद विज्ञान का अध्ययन व सेवन करता है, वह परमेश्वर द्वारा बनाये गये सभी स्वादिष्ट रसों को प्राप्त करता है। वेद-ज्ञान रूपी सरस्वती उसे घी, दूध, मधु और उदक आदि सभी उत्तमोत्तम भोग पदार्थों को प्रदान करती है। अर्थात् वेदज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति को कुछ भी अनुपलब्ध नहीं रह जाता।

महर्षि यास्क निरुक्त (५.२,३) में लिखते हैं—

स्वादिष्ठयेति गायत्रीः पावमानी जपेद् द्विजः।

भाष्यकार के मतानुसार अन्त समय में भी जो व्यक्ति प्राणायाम

पूर्वक पावमानी गायत्री का मन से ध्यान करता है। वह अपने पितरों को भी घी, दूध, मधु और जल से तृप्त करता है। जब अन्त समय जप करने का इतना पुण्य है तो जीवन भर जप करने का कितना पुण्य लाभ होगा? अतः हमें नित्य वेदों का स्वाध्याय करना चाहिए।

सामवेद में ऋषि विद्या के स्वाध्याय का फल

परम ऋषि परमेश्वर के ज्ञान की पुस्तक वेद का स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति भी ऋषि बन जाता है। लौकिक और पारलौकिक सभी कामनाएँ उसकी पूर्ण हो जाती हैं। सामवेद की संहिता को देखिये नियमित स्वाध्याय का फल कितना महान् है—

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ १॥
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ २॥
पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥ ३॥

—साम० उ० ५(२) ८(१,२,३); ऋ० ९.६७.३१,३२॥

जो व्यक्ति ऋषियों के द्वारा दिव्य रस से भरी हुई पवित्र वेद वाणी का अध्ययन करता है, वह मातरिश्वा के द्वारा आस्वादित पवित्र सब भोग्य पदार्थों को (अश्नाति) प्राप्त कर लेता है, उनका उपभोग करता है।

परम ऋषि परमेश्वर के द्वारा रस से परिपूर्ण वेदवाणी के अध्ययन करने वाले को यह विद्या रूपी सरस्वती घी, दूध, मधु और उदकादि सभी जीवन के लिए आवश्यक उत्तमोत्तम भोग पदार्थ प्रदान कर देती है।

ऋषियों द्वारा अच्छी प्रकार दुही हुई कल्याणकारिणी पवित्र वेदवाणी का अध्ययन करके ब्राह्मण लोग भी अमृत पद मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥

—साम० उ० ५(२) ८(४,५,६)

पवित्र वेदवाणी इस लोक और परलोक के सभी उत्तम पदार्थों को धारण कराती है। सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती है। सब देवों का समाहार इसी में हो जाता है। सब देव इसका अनुशीलन करते और इसकी आज्ञा को मानते हैं।

जिस पवित्र वेद वाणी से दैवतागण भी अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं, वही पवित्र वेदवाक् सहस्रों मार्गों से हमें भी पवित्र करे। कल्याणकारिणी पवित्र वेदवाक् का स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति सब प्रकार के आनन्द, पवित्र भोज्य पदार्थों का सेवन और अमर पद मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है।

लोक-परलोक का ऐसा कोई पुण्य नहीं जिसे वेद का अध्येता प्राप्त न कर सके। इतना कुछ जानने के बाद भी यदि व्यक्ति वेद स्वाध्याय में प्रमाद करता है, तो उसे हतभाग्य ही कहेगें। वह मानव जीवन के अनमोल अवसर को व्यर्थ ही गवाँता है। और पाप का भागीदार बनता है।

परमेश्वरीय वेद विज्ञान हमें ऋषियों के माध्यम से ही प्राप्त हुआ है। इसलिए उन ऋषियों का हम सब पर महान उपकार है। उनके इस उपकार से हम वेद के स्वाध्याय, चिन्तन, मनन और प्रचार-प्रसार से ही कृत्कृत्य हो सकते हैं।

सप्तम अध्याय

ऋषि बनने की कामना

वेद विज्ञान के स्वाध्याय का सबसे बड़ा लाभ है—मानव हृदय में ऋषि बनने की कामना का जागृत हो जाना। हमारे हृदय में चिरकाल से जीवात्मा अपनी सुधी को भुला कर सोई पड़ी है। उसे जगा कर उसके स्वरूप का बोध कराना—वेद विज्ञान का प्रयोजन है। अपने अज्ञान के कारण जीवात्मा संसार में आबद्ध है। ज्ञान उसकी मुक्ति का उपाय है। जो ज्ञानी है, आत्मद्रष्टा है, वही ऋषि है। निम्न ऋचाओं में ऋषि बनने की प्रार्थना की गई है।

ऋग्वेद में ऋषित्व की कामना—

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन्।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ १ ॥

—ऋ० ३.४३.५ ॥

हे इन्द्र! आप मुझे श्रेष्ठ जनों का रक्षक, सरल धार्मिक स्वभाव का शासक, सोम रस का पान करने वाला श्रेष्ठ ऋषि बनाईये और अमृत धनों का स्वामी बन जाने की शिक्षा दीजिए।

O Lord! make me the guardian of the people, a monarch of men, Make me a holy sage, the lover of spiritual bliss, and grant me the wealth that last for long.

—ऋग्वेदभाष्य—डॉ० सत्य प्रकाश सरस्वती

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ २ ॥

—ऋ० १.१०.११ ॥

हे इन्द्र कौशिक! आप हमारी उत्तम स्तुतियों को प्राप्त होकर सोमरस

का पान कीजिए। हमें लम्बी आयु दीजिए तथा हमें हजारों विद्याओं से युक्त ऋषि बनाईये।

अथर्ववेद में ऋषित्व की कामना

ऋषियों का समाज में वही स्थान होता है जो शरीर में मूर्धा का होता है। जिस राष्ट्र व समाज में आस्तिक, विद्वान, बलवान्, सदाचारी, धर्मात्मा पुरुषों का बाहुल्य हो, वह राष्ट्र आपदाओं में भी सदा सुरक्षित रहता है। इसके विपरीत आचार्य शुक्रदेव जी के शब्दों में—

यद् राष्ट्रं शू द्र भूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तं अद्विजम्।
विनष्यति आशुतत्कृत्स्न दुर्भिक्ष व्याधि पीडितम्॥

अर्थात् जिस राष्ट्र में शूद्रों की बहुतायत हो जाए, अशिक्षित या शिक्षित नास्तिक, ज्ञानहीन, बलहीन, कर्महीन तथा धनवान कंजूसों की संख्या में वृद्धि हो जाए तो वह राष्ट्र दुर्भिक्ष और व्याधि पीड़ित अथवा आतङ्कवाद आदि की समस्याओं से जर्जरित होकर शीघ्र ही समूल नष्ट हो जाता है।

ज्ञानी, ऋषि, मुनि, तपस्वी, सदाचारी धर्मात्माओं से राष्ट्र का उत्थान होता है। उनके अभाव में राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है।

ऋषियों के विषय में स्वाध्याय करने पर हमारे हृदय में ऋषित्व की कामना जागनी चाहिए। उसी कामना को जगाने के लिए वेद के आदेश हैं—

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥ १॥
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्यावेशयामसि॥ २॥
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु॥ ३॥

—अथर्व० ६.१०८.२,३,४॥

भावार्थ—मैं, अति श्रेष्ठ, ज्ञानियों द्वारा सेवित, ऋषियों द्वारा स्तुत्य, ब्रह्मचारियों द्वारा पान की गई, देवों की रक्षा करने वाली, ब्रह्मण्वती मेधा बुद्धि का आवाहन करता हूँ।

जिस मेधा को ऋभव जानते हैं। जिसे असुर=प्राण शक्ति वाले अति बलवान् पुरुष जानते हैं। कल्याणकारिणी जिस मेधा को ऋषिगण भी जानते हैं। उसी मेधा को हे प्रभु! मुझे भी धारण कराओ।

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! जिस मेधा बुद्धि को पुण्य कर्मा मेधावी ऋषिजन धारण करते हैं। उसी से आज मुझे भी मेधावी बना दो।

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम्।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले॥ ४॥
श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधिजाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव। सा नो मेखले मतिमाधेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च॥ ५॥
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परि ष्वजस्व मा दीर्घायुत्वाय मेखले॥ ६॥

—अथर्व० ६.१३३.२, ४, ५॥

भावार्थ—हे मेखले! तू ब्रह्मचारियों के द्वारा (अभिहुत) धारण की गई, उसकी तपस्या रूप अग्नि में (आहुता) आहुति रूप बन गई है। तू ऋषियों का आयुध है। तूझे (व्रतस्य पूर्वा) ब्रह्मचर्य तथा विद्या व्रत के पूर्व में ही (प्राश्नती) अङ्गिकार किया जाता है। तू (वीरघ्नी भव) वीरों की रक्षा करने वाली होईये।

यह मेखला श्रद्धा की दुहिता, तप से उत्पन्न हुई और पुण्य कर्मा ऋषियों की भगिनी की तरह रक्षा करने वाली है। हे मेखले! तू हमें सुमति, सुमेधा, तप और आत्म बल को धारण कराईये।

हे मेखले! पुण्य कर्मा, सत्य निष्ठ, पूर्व ऋषियों ने तुमसे अपने कटि को सजाया है। तुम मेरी कटि में लिपट जाओ और मुझे दीर्घायुष्य प्रदान करो।

इस सूक्त में ब्रह्मचारियों तथा ऋषियों द्वारा धारण की जाने वाली मेखला की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। इसे ऋषियों का आयुध, वीरघ्नी (वीरों की रक्षा करने वाली), ऋषियों की स्वसा, श्रद्धा की दुहिता, तपसोऽधिजाता, सुमति, मेघा, तप, इन्द्रिय तथा दीर्घायुष्य आदि के देने वाली कहा है। कितने अलभ्य लाभ मेखला के धारण करने से प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु हतभाग्य युवक, युवतियाँ मेखला के गुणों को न जानने के कारण इन महान् लाभों से वञ्चित ही रह जाते हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थों व उपनिषदों में ऋषित्व की कामना

मेखला धारण करने का पारस्कर गृह्य सूत्र में एक मन्त्र आया है। जो इस प्रकार है—

इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

—पारस्कर गृ० २.२.८॥

भावार्थ—यह मेखला (स्वसा) बहिन के समान (सुभगा) सौभाग्य प्रदान करने वाली (देवी) दिव्य गुणों से युक्त है। (दुरुक्तं) सभी दोषों व बुराईयों को (परिबाधमाना) सब ओर से हटाने वाली, वर्ण और पवित्रता को देने वाली, प्राणापान में बल का आधान करने वाली है। मुझे यह मेखला मेरे आचार्य देव से प्राप्त हुई है।

मानव जीवन में सब पुण्यों का पुण्य, सब सुधारों का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य, सब उन्नतियों की उन्नति, सब धर्म कार्यों में श्रेष्ठतम धर्म यदि कुछ है तो वह ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए उत्तम विद्याओं को प्राप्त करना है। जो इस जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन और विद्या ग्रहण करने से चूक जाता है, वह सदा-सदा के लिए चूक जाता है। उसके सौभाग्य का घड़ा फूट जाता है। सब पुण्यों का सूर्य अस्त होकर पाप भरी भयावनी रात उसके सिर पर मंडराने लगती है। सुधार के सब शुभ अवसर खो जाते हैं। सब हवा में उड़ जाते हैं। दिल और दिमाग थक जाते हैं। शरीर सब टूट जाता है। इन्द्रियाँ कोई साथ नहीं

देती। सर्वत्र निराशा नज़र आती है। ये धन, धरा, धरती सब यहीं धरे रह जाते हैं। खाली हाथ संसार से विदा होने की वारी आती है। समय को जिसने नहीं पहचाना, समय ही उसे मिटा देता है।

वे बालक और बालिकाएँ सौभाग्यशाली हैं जिनके कटि प्रदेश को आचार्य श्री ने स्वयं अपने हाथों से मेखला बाँध कर सजाया हो। मेखला ब्रह्मचारी का भूषण है। चोटी, यज्ञोपवीत और मेखला ब्रह्मचार्य के प्रतीक हैं। ऋषियों का तो मेखला आयुध है। उपनिषद् में यमाचार्य नचिकेता के प्रति उपदेश करते हुए कहते हैं—

सर्वे वेदा यद् पदमामनन्ति,
तपांसि च सर्वाणि यद् वदन्ति।
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओमित्येतत्॥

चारों वेद जिस पद का आम्नाय करते हैं। सभी तपस्वी जिसका उपदेश करते हैं और जिसको वे प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं—संक्षेप में मैं तुम्हें उस पद के विषय में बतलाता हूँ—हे नचिकेता वह 'ओम्' नाम से जाना जाता है।

भाव यह है कि उसे पाने के लिए ब्रह्मचर्य की साधना अनिवार्य है। पांच यमों में ब्रह्मचर्य और सत्य विधेयात्मक हैं। शेष तीन अंहिसा, अस्तेय, अपरिग्रह निषेधात्मक हैं। ब्रह्मचर्य क्रिया योग है सत्य उसका प्रतिफलन है। जहाँ ब्रह्मचर्य आयेगा सत्य अवश्य वहाँ पहुंच जाएगा। सत्यव्रती व्यक्ति देव बन जाता है और ब्रह्मचर्य व्रत से वह देव मृत्यु को भी जीत लेता है। यह व्रत मृत्यु पर विजय का सोपान है। किन्तु सभी उपदेश जिज्ञासु के लिए होते हैं। जिन्हें जिज्ञासा ही नहीं जगी उनके लिए तो अमृत भी व्यर्थ है। ऋषि-मुनि, ब्रह्मचर्य की साक्षात् प्रतिकृति होते हैं। ब्रह्मचर्य और सत्य की साधना जीवन को कुन्दन बना देती है। ऐसे जीवन में एक सुगन्ध पैदा हो जाती है। ब्रह्मचर्य के आनन्द की विषयी कीड़े कभी कल्पना भी नहीं कर सकते। मेखला ब्रह्मचर्य व्रत

की साधिका है।

मेखला के अर्थ

या मीयते प्रक्षिप्यते कायमध्यभागे सा मेखला ॥ १ ॥

अर्थात् जो रस्सी शरीर के कटिप्रदेश में बाँधी जाती है उसे मेखला कहते हैं।

माम+ईख्+ला=माम ईख=गति, लाति=आददाति=प्रापयति सा मेखला ॥ २ ॥

अर्थात् जो मुझे (ब्रह्मचारी) को गति, उत्साह, ज्ञान, सजगता प्राप्त कराती है। वह मेखला कहलाती है।

मा स्खलति अनया इति मेखला ॥ ३ ॥

अर्थात् जिसके धारण करने से व्यक्ति की शक्तियों का स्खलन नहीं होता, वह मेखला कहलाती है।

मां खं लाति सा मेखला ॥ ४ ॥

जो परमात्मा की प्राप्ति में मेरी सहायक बने-वह मेखला है।

मे खानि=इन्द्रियाणि (वंश) लाति सा मेखला ॥ ५ ॥

जो इन्द्रियों को मेरे वश में करावे-वह मेखला है।

ऐसे अनेक गुणों से युक्त मेखला को धारण करने वाला व्यक्ति तपस्वी बन जाता है। तप तपने वाला व्यक्ति ही ऋषि और देव बनता है।

बोधायन गृह्यसूत्र (१.१) में विद्वानों के सात भेद बतलाये हैं—ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि और देव।

उपनीत मात्रो व्रतानुचारी वेदान् किंचिदधीय ब्राह्मणः ॥ १ ॥

अर्थात् जिसका केवल यज्ञोपवीत हुआ है और वह ब्रह्मचर्यादि व्रत का पालन करता है तथा उसने वेदों का कुछ भाग भी पढ़ा हो तो वह ब्राह्मण कहलाता है।

एकां शाखामधीय श्रोत्रियः ॥ २ ॥

अर्थात् यज्ञोपवीति ब्रह्मचारी वेद की किसी एक शाखा को पढ़कर श्रोत्रिय होता है।

अङ्गाध्याय्यनूचानः ॥ ३ ॥

अङ्गों सहित वेद पढ़ने वाला अनूचान कहलाता है।

कल्पाध्यायी ऋषि कल्पः ॥ ४ ॥

कल्प सहित वेद पढ़ने से ऋषि-कल्प कहाता है।

सूत्र प्रवचनाध्यायी भ्रूण ॥ ५ ॥

सूत्र प्रवचन का अध्ययन करने वाला भ्रूण कहलाता है।

चतुर्वेदानधीत्य ऋषिः ॥ ६ ॥

चारों वेदों का विद्वान् ऋषि होता है।

अत उर्ध्वं देवाः ॥ ७ ॥

उससे अधिक ऊंचा हो तो देव कहलाता है।

यहाँ हम एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करते हैं कि कोई ब्राह्मण कैसे ऋषि बन जाता है—प्राचीन काल में रथवीति नाम के एक राजा रहते थे। उनके मन में सोम याग करने का विचार उत्पन्न हुवा। यज्ञ सम्पन्न करने के लिए उन्होंने पुरोहित रूप में अर्चनानस् आत्रेय का वरण किया। रथवीति के यज्ञ में अर्चनानस् आत्रेय अपने युवा पुत्र श्यावाश्व को भी साथ ले गये। श्यावाश्व साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ चुका था। यज्ञस्थली में श्यावाश्व राजपुत्री की ओर आकृष्ट हो गया। अपने मन के भाव को उसने अपने पिता से भी कह सुनाया। उसके पिता अर्चनानस् के मन में भी राजपुत्री को अपनी पुत्रवधू बनाने की इच्छा पैदा हुई। राजकन्या के साथ श्यावाश्व के विवाह का प्रस्ताव राजा-रानी के सामने रखा गया। रानी ने श्यावाश्व के मन्त्र द्रष्टा न होने के कारण उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। श्यावाश्व के दिल को उस घटना से बड़ी चोट लगी।

एक दिन इस घटना से दुःखी होकर वह मन ही मन विचारों में डूबा हुवा था। सहसा उसके सामने मरूद्गण उपस्थित हुए। तब श्यावाश्व

ने हड़बड़ा कर '**केष्ठाः**' (ऋ० ५.६१.१) ऋचा द्वारा प्रश्न किया। किन्तु सावधान होने पर जब उसे अपनी भूल का ज्ञान हुवा तब उसने '**य ईं वहन्ता०**' (ऋ० ५.६१.११) इत्यादि मन्त्रों के द्वारा मरूद्‌गण की स्तुति की। मरूतों की कृपा से तब उसे ऋषित्व की प्राप्ति हुई। ऋषित्व प्राप्ति का सन्देश उसने राजा रथवीति के पास भेजा। तब राजा ने क्षमा याचना करते हुए अपनी कन्या का विवाह श्यावाश्व के साथ कर दिया। इस घटना से स्पष्ट है कि श्यावाश्व मन्त्र दर्शन से पूर्व ऋषि नहीं था। इस सूक्त का दृष्टा होने से श्यावाश्व ऋषि हो गया।

एक दूसरी घटना में वेङ्कट माधव का कहना है कि अत्रि ऋषि के कुल में विश्ववारा ऋषिका हुई हैं। उसका पति वसिष्ठ कुल में उत्पन्न गौरवीति भी पत्नी के साहचर्य से ऋषित्व को प्राप्त हुवा। इस कारण अत्रिमण्डल की ऋचाओं में विश्ववारा के पश्चात् गौरवीति को भी मन्त्र द्रष्टा ऋषि का स्थान दिया गया है। ऋषियों के साहचर्य से और वेद के स्वाध्याय रूप तप से गौरवीति ऋषित्व को प्राप्त हुआ।

ऐतेरण ब्राह्मण में भी शुनः शेप के ऋषि बन जाने का वर्णन मिलता है। हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित मृत्यु भय से छः वर्षों तक वन में विचरण करता रहा। छठे वर्ष वन में विचरते हुए उसने भूख प्यास से पीडित अजीगर्त नाम के ब्राह्मण को देखा। उस ब्राह्मण के तीन पुत्र थे—शुनः पुच्छ, शुनः शेप और शुनोलाङ्गूल। रोहित ने अजीगर्त से कहा—हे ब्राह्मण! आप अपने तीन पुत्रों में से एक मुझे दे दें तो मैं आपको सौ गाय दूगाँ। अजीगर्त अपनी दरिद्रावस्था से पीड़ित था। उसने तीनों पुत्रों में से बीच वाले पुत्र को देना स्वीकार कर लिया। रोहित अजीर्गत को सौ गायँ देकर शुनः शेप को लेकर अपने पिता के पास गांव में चला गया। और पिता से कहा कि मैं शुनः शेप को निष्क्रय कर वरूण से अपने को छुडाता हूँ। उसके पिता हरिश्चन्द्र भी सुनकर प्रसन्न हुए। तब उन्होंने वरूण से जाकर कहा कि मैं इस ब्राह्मण बालक से आपका यजन करूगाँ। वरूण ने कहा—ठीक है। क्षत्रिय बालक से तो ब्राह्मण बालक

मुझे अधिक प्रिय है। वरूण ने हरिश्चन्द्र को राजसूय याग करने की विधि बतलायी।

हरिश्चन्द्र ने राजसूय याग में विश्वामित्र को होता, जमदग्नि को अध्वर्यु, वसिष्ठ को ब्रह्मा और अयास्य को उद्गाता वरण किया। किन्तु यज्ञ में ब्राह्मण पुत्र शुनः शेप को सवनीय पशु के रूप में यूप से बांधने वाला कोई व्यक्ति न मिला। तब अजीगर्त ने कहा कि यदि आप लोग मुझे सौ गाय दें तो मैं इसे यूप से बांध दूंगा। हरिश्चन्द्र ने सौ गाय देकर शुनः शेप को उजीगर्त द्वारा ही यूप से बन्धवा दिया। यज्ञ के पर्यग्निकरण के बाद पशु का वध करने को कोई व्यक्ति तैयार न हुवा। तब अजीगर्त ने पुनः कहा—हे यजमान! यदि आप मुझे सौ गाय और दें तो मैं इस पशु (शुनः शेप) का वध कर दूगाँ। उन्होंने अजीगर्त को सौ गाय दी। तब अजीगर्त तलवार लेकर शुनः शेप को मारने की तैयारी करने लगे। शुनः शेप मृत्यु भय के कारण देवताओं की उपासना करने लगा। पहले प्रजापति की उपासना की। प्रजाति के बाद अग्नि की, फिर क्रमशः सविता देव की, वरूण की, विश्वेदेवों की, इन्द्र की, अश्विनों की, उषा की उपासना की। उससे उसके देवों ने बन्धन खोल दिये। ऋत्विजों के साथ मिलकर शुनः शेप ने अभिषेचनीय सोम याग को पूरा कराया। उसके बाद शुनः शेप विश्वामित्र की गोदी में जाकर बैठ गया। अजीगर्त के बुलाने पर भी वह नहीं गया। विश्वामित्र ने ही उसे अपना पुत्र स्वीकार कर लिया। शुनः शेप को नया नाम देवरात दिया गया। और अब उसका गौत्र भी विश्वामित्र का गौत्र कौशिक गौत्र ही कहलाने लगा।

इस सारे आख्यान का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति तपश्चर्या और देवोपासना के द्वारा ऋषित्व पद को प्राप्त कर लेता है। विश्वामित्र भी स्वयं क्षत्रिय कुल में पैदा होकर ब्रह्म ऋषि बन गये थे।

❑❑

अष्टम अध्याय

ऋषि और देवों के निर्माण के उपाय

महर्षि याज्ञवल्क्य के मतानुसार—

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

—शत० १४.५.८.२ ॥

अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य, जब ये तीनों उत्तम शिक्षक होवें तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। पहले सन्तान को विद्वान् और श्रेष्ठ बनाने के लिए माता-पिता तपश्चर्या किया करते थे। इस विषय में बौधायन गृह्यसूत्र (१.७) में अच्छा प्रकाश डाला गया है। सूत्रकार लिखते हैं—

अथ यदि कामयेत श्रोत्रियं जनयेयमिति आ अरून्धत्युपस्थानात् कृत्वा त्रिरात्रमक्षार लवणाशिनावघश्शायिनौ ब्रह्मचारिणावासाते॥

भावार्थ—यदि पति-पत्नी श्रौत्रिय विद्वान को उत्पन्न करने की कामना करें तो तीन दिन तक पति-पत्नी क्षार लवण रहित भोजन करें। भूमि पर शयन करें तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। फिर अग्निहोत्र करके **'चतुर्थ्यामुपसंवेशनं वा'** चौथी रात्री यदि गर्भाधान के लिए शास्त्रानुकूल हो तो वीर्यदान देवें।

अनूचान विद्वान को उत्पन्न करने के लिए १२ दिन तक ब्रह्मचर्यपूर्वक क्षार लवण रहित भोजन करते हुए भूमि शयन करें।

भ्रूण विद्वान् उत्पन्न करने के लिए चार मास तक उसी प्रकार तप करें।

ऋषि उत्पन्न करना हो तो नो मास तक तप करें।

देव उत्पन्न करना चाहें तो—

'यदि कामयेत देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद् व्रतं चरेत्।'

अर्थात् एक वर्ष तक तप करने से देव उत्पन्न होता है। पूर्व गृहस्थ विधिवत् यज्ञादि करके गर्भाधान संस्कार करते थे। तब उन्हें देवादि रूप में सन्तान प्राप्त होती थी। ऐसी तपस्या से उत्पन्न की हुई सन्तान तपोनिष्ठ आचार्य के सानिध्य में वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके देव और ऋषियों की सृष्टि उत्पन्न होती है। आज के युग में भी यदि गृहस्थ स्त्री-पुरुष शास्त्र मर्यादा अनुसार जीवन जीयें तो वे निश्चय ही राम, कृष्ण और देव दयानन्द जैसी आत्माओं को जन्म दे सकते हैं। किन्तु आजकल के अश्लील चलचित्रों, टी०वी० और विडियों आदि के माध्यम से नग्न अङ्गों के अभद्र प्रदर्शन ने वातावरण को इतना दूषित बना दिया है कि गृहस्थ एक वर्ष तो क्या एक क्षण के लिए भी अपने मन और आत्मा को पवित्र नहीं रख सकता। परन्तु यदि हम क्रान्ति लाना चाहते हैं तो तपश्चर्या का बिगुल बजाना ही होगा। मेखला से कटिबांध कर कटिबद्ध हो कर्म क्षेत्र में कूदना होगा। यही ईश्वर का आदेश है। और वेद का सन्देश है।

सं मा॑ऽग्ने वर्च॑सा सृज सं प्रजया समायु॑षा।
विद्युर्मे॑ अस्य देवा इन्द्रो॑ विद्यात्सह ऋषि॑भिः॥

—अथर्व० ९.१.१५; १०.५.४७; ऋ० १.२३.२४॥

भावार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मुझे भी ऋषियों के साथ ऐसा वर्चस्वी, तेजस्वी, ओजस्वी, आयुष्मान् और उत्तम सन्तानों वाला बना दो कि देवता और उनका स्वामी इन्द्र भी मुझ से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे। वे भी जान जाएं कि एक दैदीप्यमान नवीन ऋषि उत्पन्न हुआ है।

महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं—

द्वयो वा इमाः प्रजाः दैव्यश्च मानुष्यश्च।
मानुष्य प्रजाः प्रजननात् प्रजायन्ते।
छन्दांसि वै दैव्यः प्रजाः तानि मुखतो जनयते॥ (शतपथ)

आचार्यो गर्भी भवति हस्तमादाय दक्षिणम्।
तृतीयस्यां स जायते सावित्र्या स ब्राह्मणः ॥

अर्थात् दैवी और मानुषी भेद से दो प्रकार की सन्तान गृहस्थ के यहाँ जन्म लेती हैं। मानुषी प्रजा पति-पत्नी के प्रजनन से उत्पन्न होती है। और दैवी प्रजा छान्दस् होती है। छन्दों की उत्पत्ति मुख के द्वारा होती है।

वेदारम्भ संस्कार के समय जब आचार्य बालक का हाथ पकड़कर गायत्री मन्त्र का उपदेश करता है तभी से आचार्य बालक को मानों अपने गर्भ में धारण कर लेता है। तीन दिन पर्यन्त बालक लवण क्षार रहित भोजन करता है और भूमि पर शयन करता है। सावित्री में जन्म लेने से उसकी ब्राह्मण-पुत्र संज्ञा होती है।

दैवी प्रजा की उत्पत्ति निश्चय से छान्दस है। किन्तु दैवी प्रजा के शरीर की उत्पत्ति तो उसके माता-पिता के संयोग से ही होती है। स्त्री-पुरुष के मध्य इस संयोग में भी भेद होता है। संयोग में दो कारण भेद होते हैं—

दौ योनि इति ब्रूयात्। देवयोनिरन्यः, मनुष्ययोनिरन्यः।
प्राचीन प्रजननात् वै देवाः। प्रतीचीन प्रजननात् मनुष्याः।

—शतपथ .... ॥

देवोत्पत्ति और मनुष्योत्पत्ति में भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। स्त्री-पुरुष के मिलने में भी दो पृथक-पृथक हेतु होते हैं। जब उनके रति कर्म में भोग प्रधान हो तो उससे मानुषी प्रजा उत्पन्न होती है। किन्तु जब प्रजनन का उद्देश्य सन्तति निर्माण हो तो दैवी प्रजा की उत्पत्ति होती है। स्त्री-पुरुष के संकल्प मात्र से उनके शरीर में विद्यमान डी०एन०ए० के गुण धर्म बदल जाते हैं। यही कारण है कि एक ही माता-पिता से उत्पन्न सन्तती भिन्न-भिन्न स्वभाव युक्त उत्पन्न होती है। वैदिक संस्कृति की यह विशेषता रही है। हमारे प्राचीन ऋषि दैवी सृष्टि उत्पत्ति के इस सूक्ष्म विज्ञान को भली-भाँति जानते थे। इसी कारण ऋषियों के कुल में

परम्परा से ऋषि आत्मा जन्म लेती रही हैं। ब्रह्मज्ञानियों के कुल में अज्ञानि पैदा नहीं होते—**नास्य अब्रह्मवित् कुले भवति**। इसलिए यह कहना यथार्थ है कि दैवी सृष्टि की उत्पत्ति भले ही आचार्य मुख से (**आसन्ना पात्रं जनयन्त देवा**—ऋ० ६.७.१) होती है किन्तु उसकी आधारशिला माता-पिता के हाथों गर्भाधान के समय ही रख दी जाती है। गर्भाधान के समय, उसके पूर्व तथा पश्चात् जिन स्त्री-पुरुषों के आचार-विचार, खान-पान और उद्देश्य पवित्र नहीं होते, वे भूलकर भी दैवी सृष्टि को जन्म नहीं दे सकते। अतः यदि हमें धरती पर दैवी सृष्टि को जन्म देना है तो उसके लिए हमें नींव का पत्थर बनना होगा। हममें ऋषियों के और देवताओं के गुण होगें तो ही हम ऋषियों और देवताओं को जन्म दे सकेगें। इसलिए प्रथम हम ऋषि बनने का संकल्प धारण करें और उसी दिशा में ईश्वर से प्रार्थना करें। विश्वामित्र के जीवन से शिक्षा लें। विश्वामित्र के हृदय में एक अग्नि जगी—तब वे कह उठे—नाऽहमनृषे स्याम। अर्थात् अब मुझे अनृषि रहना स्वीकार नहीं है। इसलिए (विश्वामित्रः तपस्तेपे) विश्वामित्र ने तप किया। तप के परिणामस्वरूप विश्वामित्र ऋषि हो गये। अतैव ऋषि बनने के लिए हमें भी तप तपना ही होगा। ईश्वर कर्म का फल अवश्य देता है। हम तप करेंगे तो अवश्य ऋषि हो जाएगें।

आर्षानुक्रमणी का वचन है—

इच्छन्निन्द्रसमं पुत्रं अभ्यधादङ्गिरा ऋषिः।
अभूदिन्द्रः स्वयं तस्य तनयः सव्य नामकः॥

तथा च—

इच्छन्निन्द्रसमं पुत्रं चचार कुशिकः पुरा।
ऐषिरथिब्रह्मचर्यं गाथिनोऽस्य सुतोऽभवत्॥

अर्थात् अङ्गिरा ऋषि ने इन्द्र के समान पुत्र की कामना करते हुए ध्यान किया। तब इन्द्र ने स्वयं सव्य के नाम से पुत्र रूप में जन्म लिया। तथा इसी प्रकार प्राचीन काल में इषीरथ के पुत्र कुशिक ने इन्द्र के

समान पुत्र की कामना की। तथा दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन किया तब उन्हें गाथी नामक पुत्र प्राप्त हुवा। वहाँ इन्द्र ही गाथी रूप में उत्पन्न हुवा। अभिप्राय यह है कि सुसन्तान के निर्माण में संकल्प शक्ति का बहुत बड़ा हाथ है। ऋषि सन्तान को जन्म देने के लिए वैसे ही संकल्प और तदनुसार व्रताचरण की आवश्यकता है। जो गृहस्थ ऐसा संकल्प लेगें वे अवश्य ही ऋषि आत्मा को जन्म दे सकते हैं।

मानव में प्रकृत्ति भेद के कारण

संसार में सभी लोगों के स्वभाव, प्रकृति, प्रवृत्ति एक समान नहीं होती। मनुष्यों की भिन्न-भिन्न प्रकृत्ति भेद में निम्न कारण होते हैं—

१. सुश्रुत का वचन है—

शुक्रशोणित संयोगे यः उत्कटः गुणो दोषः वा भवेत् तेन मनुजस्य प्रकृति जायते।

अर्थात् स्त्री-पुरुष के संयोग काल में जो गुण वा दोष प्रधान होता है उसी के अनुरूप सन्तान की प्रकृति उत्पन्न हो जाती है।

२. महाभारत में व्यास जी ने लिखा है—

ब्रह्मादिषु विवाहेषु अनुपूर्वशः ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते।
सत्वाधिको ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियस्तु रजोऽधिकः।
तमोधिको भवेत् वैश्यः गुण साम्यात्तु शूद्रता॥

—महाभारत॥

अर्थात् ब्रह्मादेवौ तथार्ष आदि आठ प्रकार के विवाहों में पूर्व-पूर्व के अर्थात् ब्राह्म विवाह देव विवाह से तथा देव आर्ष विवाह से श्रेष्ठ माने जाते हैं। उनमें से ब्राह्म तथा देव और आर्ष विवाहों में गुणों की श्रेष्ठता होती है। उसी के अनुरूप उनकी सन्तती में प्रकृति भेद होता है।

सत्व की अधिकता से ब्राह्मण, रजोगुण की अधिकता से क्षत्रिय, तमोगुण की अधिकता से वैश्य तथा गुणों की साम्यता से शूद्र पैदा होता है।

३. वेद में स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के विषय में बतलाया गया है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।

अर्थात् स्त्री-पुरुष अपने व्यवहार में दूसरे के दिल और दिमाग का भी जहाँ ध्यान रखते हैं तो उनके पारिवारिक जीवन सुख शान्तिमय बीतते हैं। ऐसे परिवारों में सन्तान भी उत्तम प्रवृत्ति की पैदा होती है। जहाँ आपस में विचारों का मेल ही नहीं खाता तो उत्तम सन्तान जन्म नहीं लेती।

४. शुद्ध सात्विक आहार के सेवन से व्यक्ति की प्रवृत्ति सात्विक होती है।

५. उत्तम प्रकार के सम्पन्न संस्कारों से युक्त सन्तान उत्तम प्रवृत्ति की होती है।

६. यथा ऋष्य अप्रीणीयात् यथा ऋष्य आप्रीणाति यजमानमेव तद्बन्धुताया नोत्सृजति॥ —ऐ०ब्रा० १.४.३४॥

अर्थात् जो यजमान ऋषियों के प्रति श्रद्धा से अनुप्राणित होकर उनकी आज्ञानुसार यज्ञ कर्म करता है, वह ऋषियों की बन्धुता को प्राप्त कर लेता है।

७. सद्गुणों की प्राप्ति के भागवत पुराण (११.१३.४) में दस उपाय बतलाये हैं—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्मश्च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुण हेतवः॥

अर्थात् वेद का अध्ययन, जल के स्नान, आचमनादि से शरीर की शुद्धि द्वारा, सत्पुरुषों का संग, एकान्त देश का सेवन, उषाकाल में जागकर ध्यानादि करके, यज्ञादि सत्कर्म करते हुए, उत्तम परिवार में जन्म, परमेश्वर के ध्यान, गायत्री आदि मन्त्र के जप और षोडश संस्कारों से युक्त होकर व्यक्ति को उत्तम बुद्धि और सात्विक प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

८. ऐतरेय ब्राह्मण (.........) में कहा गया है—

रेतो वा एवत्संवत्सरं दधतो यन्ति। यानि वै पुरा सम्वत्सरात् रेतांसि जायन्ते, यानि पञ्च मास्यानि, षणमास्यानि वा सीव्यन्ति वैतानि, न वै तै भुञ्जते॥

अर्थात् जब गृहस्थ सम्वत्सर पर्यन्त ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए प्रतिदिन यज्ञ करता है। ऐसे व्यक्ति के वीर्य से जो पुत्र पैदा होता है वह सर्वगुण सम्पन्न होता है।

सम्वत्सर पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन से वीर्य के सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

पांच या छः मास के वीर्य से उत्पन्न गर्भ का प्रायः स्राव हो जाता है क्योंकि वह वीर्य पूर्णतया पुष्ट नहीं होता।

यानि दसमास्यानि, सांवत्सरिकाणि वा तै भुञ्जते।

(ऐत०ब्रा०.......)

अर्थात् न्यून से न्यून दस मास वा एक वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन से उत्पन्न सन्तान ही गृहस्थ के सुखों का कारण बनती है। ऐसी सन्तान में ही उत्तम प्रवृत्ति पैदा होती है।

उत्तम प्रवृत्ति की सन्तान ही वेदवित् होकर तपश्चर्या से ऋषित्व पद को प्राप्त कर सकती है।

❑❑

नवम अध्याय

ऋषियों का तप और क्षात्र धर्म

तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति।
ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ १॥

—अथर्व० ८.१०(४).१६॥

अर्थात् सप्त ऋषि ब्रह्म और तप के आश्रय पर जीवन व्यतीत करते हैं। और जो इस रहस्य को जान लेता है वह भी ब्रह्मवर्चस्वी होकर जीवन जीने लगता है। इस सूक्त में यह मन्त्र पाठ ४ बार आया है। जो एक परम सत्य को दृढ़ता से उजागर करता है। ब्रह्म और तप मानों कि ऋषियों का पर्याय बन गया है। अपनी ज्ञानेन्द्रियों वा सप्त प्राणों को जब व्यक्ति ज्ञान और तप से तपाता है तभी ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति होती है।

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह॥ २॥

—अथर्व० १२.१.३९॥

जिस पृथिवी पर आदि सृष्टि के पुण्यकर्मा सप्त ऋषियों ने ज्ञान सत्र में तप करते हुए वेद वाक् का स्तवन किया (वह भूमि हमें मनोवांछित धनों को प्राप्त करावे)। ऋषियों द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान के अनुसार जीवन जीते हुए सभी व्यक्ति अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं।

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान्परेभिः।
त्रिसप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन्पदयोपनेन॥ ३॥

—अथर्व० १२.२.२९॥

अर्थात् (अवरान्) निकृष्ट मार्गों का (अतिक्रामन्तः) अतिक्रमण करके (वायुमद्भिः) वायु के वेग से (उदीचीनैः) सुषुम्ना द्वारा (परेभिः

पथिभिः) श्रेष्ठ मार्गों से (ऋषयः) ऋषि जनों ने (त्रिसप्त कृत्वा) २१ प्राणायाम करके (पदयोपनेन) पैरों से कुचलते हुए (मृत्युं प्रत्यौहन्) मृत्यु को दूर हटा के (परेताः) परले=श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लिया। प्राणायाम के तप से ऋषियों ने मन और इन्द्रियों का संयम करके मृत्यु को भी परास्त कर दिया।

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन। सोमपाः सोमपायिन
इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ ४॥

—अथर्व० १८.३.६४॥

भावार्थ—हे सोम का पान करने वाले ऋषियो! आप सदा सोमादि उत्तम ओषधियों की रक्षा करने वाले हो, भय रहित होकर आप उत्तम देव लोक में आरोहण करो। ये उत्तम सोम की हवियाँ आप के लिए हैं। इस के रसपान से हमनें भी उत्तम ज्योति को प्राप्त किया है।

तप के कारण ही ऋषिजन देव लोक को प्राप्त करते हैं।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ ५॥

—अथर्व० १९.४१.१॥

भावार्थ—ऋषियों ने प्रजा के कल्याण की कामना से दीक्षित होकर तप और व्रत का अनुष्ठान किया। उनके तप के फलस्वरूप राष्ट्र में बल और तेज प्रकट हुए। ऐसे राष्ट्र और ऋषियों को देवतागण भी प्रणाम करते हैं।

किसी भी राष्ट्र के ऋषि उसके सरताज होते हैं। उनके तप से, विद्या से राष्ट्र में नवजीवन आता है।

ओ आज के नोजवान! इन रंग रेलियों में इस अनमोल जीवन को व्यर्थ न गवाँ। उठ, तप कर। तप पूत बन कर राष्ट्र का नेतृत्व संभाल। नीरज के शब्दों में—

चाहे तू एक दिन को जी, चाहे तू युग युगों तक जी।
मगर इन्सान बन कर जी, नेक इन्सान बन कर जी।

तू सरताज बनकर जी, अटल विश्वास बनकर जी।
अमर युग गान बनकर जी॥
कल के स्वप्न न देख, तू जिन्दगी का आज बनकर जी।
निज देश का अरमान और जगत् का सरताज बन कर जी।
जन्म जन्मों से तू उड़ रहा, निस्सीम इस नीले गगन पर।
किन्तु फिर भी छांह मंजिल की, नहीं पड़ती तेरे नयन पर।
जीवन लक्ष्य पर पहुँचे बिना, अगर मिट गया तू।
जग हसेगा खूब तेरे इस करूण असफल मरण पर।
ओ मनुज! मत विहंग बन, तू आकाश बनकर जी॥
अटल विश्वास बनकर जी, अमर युग गान बनकर जी॥ १॥
एक युग की आरती पर तू चढ़ाता निज नयन ही।
पर कभी ये पाषाण क्या पिंघल पाये एक क्षण भी।
आज तेरी दीनता पर पड़ रही नजरें जगत् की।
भावना पर हंस रही प्रतिमा धवल, दीवार मठ की।
मत पुजारी बन स्वयं भगवान बनकर जी॥
अटल विश्वास बनकर जी। अगर युग गान बनकर जी॥ २॥

ऋषियों का क्षात्रधर्म

वेद मन्त्रों के स्वाध्याय से विदित होता है कि ऋषि जन अपने क्षात्र बल, व तपो बल से दुष्टों की बड़ी-बड़ी सेनाओं को भी परास्त करके उन पर शासन करने में सक्षम होते हैं। इस आशय को प्रकट करने वाली ऋचायें द्रष्टव्य हैं—

स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना विमृधो हन्मि रक्षसः॥ १॥

—अथर्व० ८.५.८॥

भावार्थ—मनीषि ऋषियों की भाँति मैंने शत्रु की सब सेना को जीत लिया है हिंसक राक्षसों को मैं मार गिराता हूँ।

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः। प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे॥ २॥

—अथर्व० ८.५.१०॥

भावार्थ—सभी देवगण, इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट्, वैश्वानर और सब ऋषिगण मिलकर इस वीर पुरुष को रक्षा कवच बाँधें। ये अपनी क्षात्र शक्ति से मानव को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन्नदिते अर्बुदे तव॥ ३॥

—अथर्व० ११.९.२५॥

हे तोड़ फोड़ के कर्म में वर्तमान वीर पुरुष! शत्रुओं को भली प्रकार देखते हुए ऋषिगण तुम्हारे शासक होवें। अर्थात् ऋषियों के अनुशासन में ही व्यक्ति अपने जीवन को सुरक्षित रख सकता है। अपने जीवन का नेतृत्व ऋषिजनों के हाथों में सोंप दीजिए।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मा-स्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स ऋषीणां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ४॥ —अथर्व० १६.८.१२॥

भावार्थ—एक वीर पुरुष उद्घोष करता है कि जो पदार्थ हमनें अपने बाहुबल से जीता है वह हमारा हो गया है। जिसको हमने खोज कर निकाला है वह भी हमारा है। हमारे पास वेदज्ञान है, तेज है, अन्न है, सुख है, यज्ञादि कर्म हैं, पशु हैं, प्रजा है और वीरों की सेना है। इन सब हेतुओं से हम किसी भी दुष्ट का, उसकी पत्नी तथा औलाद का भी सम्पत्ति से अधिकार छीनकर उन्हें बेदखल करते हैं। हम इस दुष्ट को ऋषियों के बन्धनों में बांधते हैं। अब यह ऋषियों के बन्धनों से कभी नहीं छूट सकता। मैं उसके वर्चस्, तेज, प्राण और आयु को छीनकर इसे अपने पैरों के नीचे कुचलता हूँ।

इस सूक्त के अन्दर २७ प्रकार के पाशों का उल्लेख है। ईश्वर की व्यवस्था को भंग करने वाला दुष्ट प्राणी उन पाशों में फंस जाता है। तथा जन्म जन्मान्तर तक दुःख को भोगता है।

सूक्त में बतलाया गया है कि ऋषि जन केवल ज्ञान के क्षेत्र में ही अग्रगन्य नहीं है, अपितु वे क्षात्र बल में भी अद्वितीय स्थान रखते हैं। ब्रह्मबल और क्षात्रबल उनमें एक साथ समाविष्ट होते हैं। इसलिए कोई दुष्ट उनके सामने नहीं टिक सकता।

❑❑

दशम अध्याय

यज्ञों में ऋषियों का वरण करें

त्वामद्यऽऋषऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽआ सङ्गतेभ्यऽएष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽआ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि॥ १॥

—यजु० २१.६१॥

हे ऋषे! श्रेष्ठ ऋषे! हे ऋषियों की सन्तान! यह यजमान बहुत योग्य पुरुषों से आज आपका वरण करे। यह विद्वानों में मेरे धन और जल को स्वीकार करे। हे विद्वान्! देवजन जिन दान योग्य पदार्थों को देते हैं, उन सबका इस यजमान के लिए आप अच्छे प्रकार उपदेश कीजिए। तू इसके लिए वेद के सूक्तों का उत्तम उपदेश कीजिए। और इसे अनुशासन सिखाईये।

मन्त्र का भाव यह है कि यज्ञादि सभी श्रेष्ठ कर्मों में गृहस्थ यजमान को ऋषि जनों को आमन्त्रित करना चाहिए। उनका श्रद्धा से सम्मान करना चाहिए। जीवन जीने की विद्या उन ऋषि जनों के द्वारा ही प्राप्त होती है। क्योंकि वे जीवन के यथार्थ को जानने वाले होते हैं। और वे सदा सत्य विद्या का ही उपदेश करते हैं जो जीवन के लिए सदा कल्याणकारी होती है।

ऋषि जन ब्रह्म का उपदेश करें

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा.....................प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥ १॥ —यजु० १५.१०-१४॥

भावार्थ—आकाश में विद्युत के कारण जैसे सभी पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे ही देवों में आगे बढे हुए ऋषिगण तुम्हें धर्म उपदेश के द्वारा शुभगुणों से युक्त करें। जगत् का अधिपति परमेश्वर और ऋषिगण यजमान को स्वर्गलोक में स्थापित करें। अर्थात् यजमान के जीवन को सुखों से युक्त बनावें। इसी प्रकार का उल्लेख अगले चार मन्त्रों में भी मिलता है।

तऽआयजन्त द्रविणꣳसमस्माऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥ २॥

—यजु० १७.२८॥

भावार्थ—परोक्ष व प्रत्यक्ष सभी लोक लोकान्तरों में श्रेष्ठ ऋषिजन सब मनुष्यों को सुशिक्षित करते हैं। जिससे वे धर्मानुसार धनार्जन करके उसे ईश्वर आज्ञानुसार लोकहित में व्यय करते हैं।

The old seers were as if praise singers and created all the beings, visible and invisible, existing in the world. They have provided plenty of riches also for them. (by Dr. Satya Prakash)

समास्त्वाग्नऽऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या। सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वाऽआभाहि प्रदिशश्चतस्रः॥ ३॥

—यजु० २७.१॥

भावार्थ—हे (अग्ने) पवित्र आत्मा! सत्य धर्म में प्रतिष्ठित ऋषि-गण ही तुझे सब ऋतवों और सम्वत्सरों में अपने उपदेश द्वारा बढाते हैं। जैसे द्यौ लोक के प्रकाश से सब दिशा और दिशान्तर प्रकाशित हो रही हैं। वैसे ही आप मुझे भी प्रकाशित करो। सत्य विद्या का उपदेश करो। स्वाध्याय और प्रवचन ऋषिजनों के नित्य के कर्त्तव्य कर्म ही होते हैं। इन्हीं के द्वारा वे संसार का यथार्थ धर्म के लिए मार्ग दर्शन कराते हैं।

सब लोग ऋषियों का अनुकरण करें

येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳस्वराभरन्तः।
तस्मिन्नहं निदधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम्॥ १॥

—यजु० १५.४९॥

भावार्थ—मनस्वी लोग जिस अग्नि को मुक्ति का हेतु बतलाते हैं। ऋषिगण तपश्चर्या से ईश्वर का प्रणिधान करके उस अग्नि का प्रकाश करते हैं। मैं भी ऋषियों का अनुकरण करता हुआ अपने हृदय में उस अग्नि का आधान करूँ। वैसा ही हम सब लोग करें।

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳरक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥ २॥

—यजु० १८.५२॥

हे अग्ने! ज्ञान और कर्म ये तेरे दो कभी जीर्ण न होने वाले, बहुत ऊँची उड़ान भरने में समर्थ पंख हैं। इनसे ही आप पापों और राक्षसों को दूर भगाते हो। प्राचीन ऋषियों ने इन्हीं के सहाय से उत्तमोत्तम लोकों को प्राप्त किया था। हम भी इसी प्रकार उत्तम लोकों को प्राप्त करें।

ऋषियों की शिक्षा के अनुसार ही जीवन जीने से मानव जीवन का कल्याण होता है। उनकी शिक्षा में रहकर यह लोक और परलोक दोनों ही सफल हो जाते हैं। उनकी शिक्षा की अनसुनी करने वाले अपने लोक-परलोक दोनों ही नष्ट कर लेते हैं।

ऋषि जन कब प्रसन्न होते हैं

उप प्रागात्सुमन्मेऽध्यायी मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्॥

—ऋ० १.१६२.७; यजु० २५.३०॥

भावार्थ—जिस व्यक्ति ने ईश्वर और विद्वानों के विज्ञान को जीवन में धारण किया हो उस सदाचारी सुबन्धु विप्र को देखकर ऋषिजन प्रसन्न होते हैं। तथा वे ही लोग अपने शरीर और आत्मा की पुष्टि को प्राप्त करते हैं।

मानव जीवन में ब्राह्मण आत्मा तीन ऋणों को लेकर उत्पन्न होता है। तीन ऋण है—पितृ ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण। पुत्रोत्पत्ति से पितृ ऋण, तप और ब्रह्मचर्य से ऋषि ऋण तथा यज्ञों के द्वारा देव ऋण से व्यक्ति मुक्त होता है। ऋषियों की विद्या का अभ्यास तथा उसके प्रचार-प्रसार से ही व्यक्ति ऋषि ऋण से उऋण होता हैं। और तभी ऋषिजन प्रसन्न होते हैं। ऋणभार से मुक्त होकर ही व्यक्ति अमरपद को प्राप्त करता है।

❑❑

एकादश अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषियों की स्तुति

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। ईश्वर अनादि और अनन्त है अतैव उसका ज्ञान भी अनादि और अनन्त है। सृष्टि के आदि में ईश्वरीय ज्ञान ऋषियों के अन्तःकरण में प्रकट होता है। यह हम पूर्व में लिख आये हैं। कालक्रम से वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों का उच्चस्थान है। अत: ऋषि-प्रकरण में ब्राह्मण ग्रन्थ क्या कहते हैं? पाठकवृन्द आइये, अब हम इसी का अवलोकन करें—

तैत्तिरीय आरण्यक का वचन है—

अजान् ह वै पृश्नीस्तँपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्, तदृषयोऽभवन् तदृषीणामृषित्वम्॥ १ ॥ —तै०आ० २.९.१॥

अर्थात् अजन्मा नित्यशाश्वत् पृश्नी (आत्मा) जब तप कर रहा था, तो उसे ब्रह्म=ज्ञान प्रकट हुआ। ब्रह्मज्ञान को पाकर पृश्नी ऋषि हो गया। ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेना यही ऋषि का ऋषित्व है।

माध्यनदिन शतपथ में लिखा है—

अथ यदेवानुब्रुवीत तेनऽर्षिभ्य ऋणं जायते। तद्धयेभ्य एतत् करोत्यृषीणां निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः ॥ २ ॥

—माध्यनदिन शत० १.७.२.३॥

अर्थात् जो व्यक्ति ऋचाओं का पाठ करता है, वह ऋषियों का ऋणि हो जाता है। विद्वानों का कथन है कि ऋचाओं का पाठ करने वाला स्वाध्यायशील व्यक्ति ऋषियों की निधि की रक्षा करता है।

इमौ ते पक्षौ अजरौ पतत्रिणो याभ्यां रक्षांस्यपहंस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रर्षयः प्रथमजा ये पुराणा॥ ३ ॥

—तै०सं० ४.७.१३.१; तु०मै० २.१२.३; कपि० २९.४॥

अर्थात् हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! ये दो तेरे (ज्ञान और कर्म=सृष्टि उत्पत्ति आदि) कभी जीर्ण न होने वाले पँखों के समान हैं। जिनसे तू राक्षसों का वध करता है। उनके सद् उपयोग द्वारा हम भी उस सुकृत लोक को प्राप्त होवें, जहाँ पूर्वोत्पन्न प्राचीन ऋषियों की आत्मायें निवास करती हैं।

ऋषयः कवयः॥ ४॥ —मै० ४.१.२॥

अर्थात् ऋषिजन कवि ही होते हैं। अतैव वे अपनी बात को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

ऋषयोऽदुह (माम्) चमसेन छन्दांसि च पशूँश्च।॥ ५॥

—मै० ४.२.१३॥

अर्थात् ऋषियों ने वेदवाक् रूपी गाय का दोहन किया। अपने चमस (हृदय) को उन्होंने पात्र बनाया। उन्हें उसमें छन्द और पशु (विभिन्न विषय) प्राप्त हुए।

ऋषयोऽश्रम्यन्, ते तपोऽतपयन्त॥ ६॥

—तै०सं० ५.३.५.३-४॥

अर्थात् ऋषियों ने श्रम करते हुए तप किया। अपने तप के कारण ही ऋषि महान् होते हैं।

ऋषयो ह वै स्वर्गं लोकं जिग्युः श्रमेण तपसा व्रतचर्येण॥ ७॥

—जै० ब्रा० २.२१७॥

अर्थात् ऋषयों ने अपने श्रम, तप और सत्य तथा ब्रह्मचर्य पालन रूप व्रत से स्वर्ग लोक को जीत लिया।

ऋषिर्विप्राणाम् (पदवीमत्येति)॥ ८॥

—तै०सं० ३.४.११.१; काठ० २३.१२; तै०आ० १०.१०.१॥

अर्थात् ऋषि विप्रों की पदवी का भी अतिक्रमण कर जाता है।

ऋषिर्हस्म मन्त्रकृद् ब्राह्मण आजायते॥ ९॥ —जै०ब्रा० २.२६६॥

अर्थात् मन्त्र का दर्शन करने वाला ब्राह्मण ही ऋषि हो जाता है।

एते वै कवयो विप्रा यदृषयः ॥ १० ॥

—माध्य०शत० १.४.२.७-८ ॥

अर्थात् ये ऋषिजन ही कवि और विप्र कहलाते हैं।

छन्दासि वा ऋषिणाम् स्तुतम् ॥ ११ ॥

—मै० १.५.८; काठ० ७.६ क० ५.५ ॥

अर्थात् छन्द ऋषियों द्वारा की गई परमेश्वर की स्तुतियों का ही रूप हैं।

ततो वै स (अनूपः) उभयं ब्रह्म च क्षत्रं चावरून्धे राजा सन् ऋषिरभवत्। उभयमेव ब्रह्म च क्षत्रं चावरून्धे राजा सन् ऋषि भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ —जै०ब्रा० ३.९७ ॥

अर्थात् जब तपोनिष्ठ पूतात्मा ने अपने में ज्ञान और बल का संचय किया तो उससे वह दीप्त होकर ऋषि बन गया। जो उस विज्ञान को जानकर इन दोनों में मन का अवरोध कर लेता है तो वह भी प्रकाशमान होकर ऋषि ही हो जाता है।

तान् (प्रजापत्यादीन्) ऋषयोऽब्रुवन्नुप व आज्यमेति, केन न उपैष्यथेति, भूम्नेत्यब्रुवन् ॥ १३ ॥ —तै०सं० ५.७.५.७ ॥

अर्थात् ऋषियों ने प्रजापति आदि देवों को समीप बुलाकर पूछा कि तुम्हारी क्या कामना है? उन्होंने उत्तर दिया कि भूमा की प्राप्ति हमें अभीष्ट है। '**भूमा वै सुखम् भवति**'—भूमा की प्राप्ति से ही शाश्वत सुख प्राप्त होता है।

ते यत् पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषन् तस्मादृषयः ॥ १४ ॥ —माध्य०शत० ६.१.१.१ ॥

अर्थात् हम सबसे पूर्व इस ब्रह्म की प्राप्ति की कामना करते हुए वे श्रम और तप में सबसे आगे निकल गये, इस कारण वे ऋषि कहलाये।

नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत् ॥ १५ ॥ —तै०आ० १.११.७ ॥

अर्थात् ऋषित्व को पाकर कोई भी विप्र नगर में प्रवेश न करे। (यदि जाना ही पड़े तो किसी दूसरे को साथ लेकर जाए। अकेला न

जाए।) ऋषि लोग ग्राम या नगर में निवास नहीं करते। वे पर्वत की उपत्यकाओं या नदियों के संगम अथवा वन में आश्रम बनाकर रहते हैं। ग्राम-नगर का परिवेश रजोगुण प्रधान होता है। वहाँ ऋषियों के ज्ञान के पारखी सुलभ नहीं होते। इसलिए उनका ग्राम प्रवेश वर्जित है।

प्राणा उ वा ऋषयः ॥ १६ ॥

—शत० ६.१.१.१, ८.४.१.५; १४.५.२.५; तु०ऐ० २.२७ ॥

अर्थात् प्राण ही ऋषि हैं। चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियाँ प्राण नाम से जानी जाती हैं। वे अपने-अपने विषयों का प्रत्यक्ष कराने से ऋषि नाम से पुकारी जाती हैं।

ब्रह्मणः सायुज्यमृषयोऽगच्छन् ॥ १७ ॥ —तै०आ० २.९.२ ॥

अर्थात् ब्रह्म=परमात्मा के सायुज्य को ऋषियों ने ही प्राप्त किया।

भद्रं पश्यन्त उपसेदुरग्रे तपो दीक्षामृषयः सुवर्विदः ॥ १८ ॥

—तै०सं० ५.७.४.३ ॥

अर्थात् प्रथमतः राष्ट्र के भद्र की कामना से ज्ञानी ऋषि तप और दीक्षा में प्रवृत्त हुए।

येनर्षयम् (येना ऋषम्) तपसा सत्रमासेन्धना अग्निं स्वराभरन्तः ॥ १९ ॥

—तै०सं० ४.७.१३.२.३; मै० २.१२.४; काठ० १८.१८; कपि० २९.६;

अर्थात् विद्या सत्र में बैठकर ऋषियों ने तप करते हुए अपनी अन्तरात्मा में विचार रूपी इन्धन से ज्ञानाग्नि का आभरण किया। विचार, चिन्तन, मनन ही ज्ञानाग्नि का इन्धन है।

ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः ॥ २० ॥

—ऐत० ६.१० ॥

अर्थात् जो ऋषिगण हमसे पूर्व हुए हैं वे सबके सब कवि थे।

यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः ॥ २१ ॥

—शत० ४.३.४.१९ ॥

अर्थात् जो ज्ञान में अधिक ज्ञानी होना है वही ऋषि का आर्षेयत्व

है।

स हायमृषिरागत्य न शशकोत्थातुमसुराशनेन। गरो हैनम् आविवेश, यद् वा मित्राय दुद्रोह, यद्वा विद्विषाणानामशन-माश॥ २२॥ —जै० २.८३॥

अर्थात् ऋषि असुर का अन्न खाने से उठने में भी समर्थ नहीं रहा। उसमें विष प्रवेश कर गया। जो व्यक्ति मित्र से द्रोह करता है अथवा अपने विद्वेषियों का अन्न खाता है, उसमें विष प्रवेश कर जाता है।

दूषित अन्न का कितना बड़ा प्रभाव है यह इस आख्यान से स्पष्ट है।

❑❑

द्वादश अध्याय

निरुक्त में ऋषियों का स्वरूप

निरुक्त यास्कीयनिघन्टुका व्याख्यान ग्रन्थ है। प्राचीन सभी निघन्टु ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ग्रन्थ ही थे। अतः काल क्रमानुगत

वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् यास्कीय निरुक्त प्राचीन ग्रन्थ है। ऋषित्व-प्रकरण में यास्क के जो वचन उपलब्ध होते हैं, उन्हें हम नीचे दर्शाते हैं—

१. **साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः॥** —नि० १.२०॥

अर्थात् सृष्टि के आदि में साक्षात्कृत धर्मा ऋषि हुवे थे। उन्होंने अपने से छोटों के लिए, जो कि साक्षात्कृत धर्मा नहीं थे, अपने उपदेश के द्वारा मन्त्रार्थ का बोध कराया।

२. **ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः॥**

—नि० २.११॥

अर्थात् वेदार्थ के दर्शन करने से ही ऋषि कहलाता है। उपमन्यु आचार्य के मतानुसार जिन मनुष्यों के हृदय में वेदों का प्रथम प्रकाश हुआ, जिन्होंने स्तोमों का साक्षात्कार किया वे ही ऋषि कहलाते हैं।

यहीं पर यास्क [तै०आ० २.९] के पाठ को भी उद्धृत करते हैं

''तद्यदेनाँस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वम्भ्वभ्यानर्षत् ते ऋषयोऽभवन्, तदृषीणामृषित्वम्। इति विज्ञायते।

अर्थात् इन तप करते हुवों के हृदय में ब्रह्म=वेद ज्ञान प्रकट हुआ। उसी से वे ऋषि हुए। यही ऋषियों का ऋषित्व है। यह वेदों के व्याख्यान ग्रन्थ ब्राह्मणों से जाना जाता है।

३. यास्क नदी नामों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

नद्यः कस्मात्। नदना इमा भवन्ति।......तत्रेतिहासमाचक्षते— विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। विश्वामित्रः सर्वमित्रः॥
—नि० २.२४॥

भावार्थ—इस प्रकरण में यास्क राजा सुदास पैजवन के पुरोहित ऋषि विश्वामित्र का स्मरण तो करते हैं, किन्तु वेदार्थ में ऐतिहासिक विश्वामित्र को स्वीकार नहीं करते। यह भाव उनके शब्दों से ही स्पष्ट है जो कि वे विश्वामित्रः का निर्वचन सर्वमित्रः शब्द से कर रहे हैं। ऐतिहासिक विश्वामित्र सर्वमित्र नहीं हो सकता। जिन असुरों का वह राम-लक्ष्मण के द्वारा वध कराता है, उनका मित्र वह कैसे हो सकता है? वैदिक इतिहास के विद्वान् पं० भगवद्दत जी के अनुसार—भारतीय इतिहास में कई विश्वामित्र ऋषि हो चुके हैं। उनके अपने पूर्व नाम भिन्न-भिन्न थे। विश्वामित्र नाम उन्होंने वेद से ग्रहण किया है। वेद में दिव्य ऋषियों का ही वर्णन है। ऐतिहासिक ऋषियों का नहीं। महाभारत शान्ति पर्व में कहा गया है—

यस्य रश्मि सहस्रेषु शाखास्विव विहंगमाः।
वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह॥

अर्थात् जैसे वृक्ष पर पक्षी विश्राम करते हैं, वैसे ही सूर्य की सहस्रों रश्मियों के तुल्य सिद्ध मुनि गण देवताओं के साथ रहते हैं।

सूर्य की रश्मियों में अभि, अङ्गिरा, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, भृगु, गौतम, भरद्वाज, काश्यप, जमदग्नि, विश्वामित्र आदि नाम वाले दिव्य ऋषि निवास करते हैं। ये प्राणादि रूपों में होते हैं। कभी ये पृथक-पृथक और कभी सप्तगणों के रूप में सूर्य मण्डल में रहते हैं। उनके कारण ही पृथिवी पर गर्मी, वर्षा और शीत होता है। इसमें विष्णु पुराण के निम्नाङ्कित वचन प्रमाण हैं—

सोऽयं सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनिसत्तम। हिम उष्ण वारिवृष्टिनां हेतुत्वे समयं गताः॥
—वायु० २.१०.२१॥

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ३३वें सूक्त का देवता 'नद्य' है। इसी की व्याख्या में यास्क इस ऐतिहासिक पक्ष का उल्लेख कर रहे हैं।

वस्तुतः वेद में न तो ऐतिहासिक नदियों का नाम है और न ऐतिहासिक विश्वामित्र है। प्राण आदि ऋषि सृष्टि बनने से पहले ही अस्तित्व में आ चुके थे। यहाँ शतपथ का वचन द्रष्टव्य है—

ते यत् पुरास्मात् सर्वस्मात्।　　—शतपथ० ६.१.१.१॥

अर्थात् वे हम सब से पूर्व विराजमान थे।

निरुक्त में मध्यम स्थानी देवगणों के प्रकरण (११.१६) में अङ्गिरसों का उल्लेख है। जिसके उद्धरण में निम्नाङ्कित ऋक् पढ़ी हुई है—

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे॥　　—ऋ० १०.६२.५॥

यास्क भाष्य—

बहुरूपा ऋषयस्ते गम्भीर कर्माणों वा गम्भीर प्रज्ञा वा। तेऽङ्गिरसः पुत्राः। तेऽग्नेरधिजज्ञिरे। इत्यग्निजन्म॥

अर्थात् वे ऋषि बहुत रूपों वाले थे। गम्भीर कर्म तथा गम्भीर प्रज्ञा वाले थे। वे अङ्गिरा के पुत्र, अग्नि से उत्पन्न हुए। ये सब दिव्य हैं। यहां दिव्य विश्वामित्र ऋषि का अन्तरिक्षस्थ नदियों से सम्बन्ध कहा गया है। वह उन नदियों से ठहरने की प्रार्थना करते हैं। और उनकी प्रार्थना से नदियाँ ठहर जाती हैं।

नदियों के ठहरने की घटना का उल्लेख कश्मीरी कवि कल्हण ने राजतरङ्गिणी (२/२४५) में भी किया है। उसके अनुसार कभी कश्मीर में ललितादित्य नाम के राजा थे। वह किसी समय सिन्धु संगमों के पञ्चनद स्थान पर अपनी सेना सहित घिर गये। उसके पास रस विद्या के विद्वान् कङ्कणवर्ष का सहोदर चुङ्कुण नामक विद्वान था। चुङ्कुण ने अगाध जल में एक मणि फेंकी तो उसके प्रभाव से जलस्तर नीचे चला गया। तब राजा ने सेना सहित नदी को पार किया। प्राचीन ऋषियों के पास ऐसे अनेक मणिरत्न होते थे। विश्वामित्र ने भी राम को शुष्क और

आर्द्र अश्नि दो अस्त्र दिये थे। इस ऐतिहासिक विश्वामित्र ने भी नदियों को गाहने योग्य कर दिया था। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में भी कभी दिव्य विश्वामित्र ने नदियों से ठहरने की प्रार्थना की—ऐसा ही भाव ऋक् में दर्शाया है। लेकिन वेद के दिव्य अर्थों की अनदेखी करके उनका ऐतिहासिक अर्थ करना बहुत बड़ी भूल होगी। वेदार्थ से अनभिज्ञ पाश्चात्य जगत् के विद्वान् ऐसा ही करते रहे हैं। ऐतिहासिक घटनाओं का वेदार्थ के साथ कभी भी पूरा-पूरा मेल नहीं बैठ सकता। वह अर्थ की खींचतान है। इस दिव्य विश्वामित्र को [ऋ० ३.३३.५] में कुशिकस्य सूनुः कहा है। ऐतिहासिक पक्ष में तो कुशिक नाम के राजा हुए हैं, उनके पुत्र विश्वामित्र कौशिक कहलाये। किन्तु वेदार्थ में कुशिक क्या है? इस विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का पाठ देखिये—

अथ यत् सुवर्ण रजताभ्यां कुशीभ्यां परिगृहीत आसीत्।
सास्य [आदित्यस्य] कौशिकता॥ —तै०ब्रा० १.५.१०.२॥

अर्थात् सुवर्ण तथा चाँदी की आभा युक्त कुशी रूपी सूक्ष्म चक्र सूर्य के चारों ओर अवस्थित होने से, वह आदित्य कौशिक कहलाता है। उस कुशी से सम्बन्धित तत्व का नाम कुशिक है। और कुशिक से उत्पन्न होने वाला कौशिक है। यही दिव्य विश्वामित्र कौशिक है।

४. निरुक्त (३.११) में यास्क वज्र नामों का परिगणन करते हुए लिखते हैं—

वज्रनामान्युत्तराण्यष्टादशा वज्रः कस्मात्। वर्जयतीति सतः। तत्र कुत्स इत्येतत्कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति। कर्त्ता स्तोमा-नामित्यौपमन्यवः। अथाप्यस्य वधकर्मैव भवति। तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघानेति।

अर्थात् वधकर्मक धातुओं से आगे अठारह वज्र नाम कहते हैं। वज्र नाम किस कारण से हुआ? वर्जित करने से वज्र नाम पड़ा। वज्र को कुत्स भी कहते हैं। यह पद कृन्तति धातु से बना है। कुत्स, ऋषि नाम भी है। औपमन्यव आचार्य के मत से कुत्स ऋषि स्तोमों=स्तुति मन्त्रों

का कर्त्ता है। कुत्स नाम में भी वध कर्म का भाव निहित है। इस कुत्स का सखा इन्द्र है। इन्द्र ने शुष्णम्=सूखा डालने वाले असुर को मारा।

यहाँ भी कुत्स ऋषि मध्यस्थानीय है। उसका सखा इन्द्र भी मध्य स्थानीय है। जो सूखा डालने वाले असुर (मेघ) को मार कर वर्षा करता है।

ताण्डय ब्रा० १४.६.८ के अनुसार एक कुत्स औरव था जो इन्द्र के उरू से बना था। जो अति बलवान था। जै०ब्रा० ३.१९९ में एक कुत्स ऐतिहासिक राजा प्रतीत होता है। किन्तु वैदिक कुत्स अन्तरिक्ष में किसी कर्षक का कर्म करता रहता है। उसका एक साथी और प्रतिद्वन्द्वी लुश है। इन दोनों की माया जै०ब्रा० १.२२९ में मिलती है।

ऋग्० प्रथम मण्डल के सूक्त ९४ से लेकर ११५ तक के २२ सूक्त कुत्स ऋषि के सूक्त हैं। यह कुत्स इन्द्र का सखा है। १०५में सूक्त में ऋषी त्रित और कुत्स हैं। मन्त्रों के अनुसार ये दोनों कूप में पतित हैं। यह कूप भी दिव्य ही है। एकतः, द्वितः और त्रितः—**अद्भ्यो जायन्त** (तै०ब्रा० ३.२.८.१०-११) अर्थात् ये एकत, द्वित, त्रित आप से उत्पन्न हुए हैं।

कुत्स आङ्गिरस है। अतः वह आग्नेय है। अङ्गिरा (ऋ० १.३१.१) के अनुसार आग्नेय परमाणुओं का रूप है। कुत्स और त्रित के आख्यान दैवी जगत् से सम्बन्धित है। वह दिव्य कुत्स—

स्तोमं जनयामि नव्यम् अर्थात् नव्य स्तोमों का जनयिता है। उसी के नाम पर लौकिक ऋषि का नाम कुत्स हुआ। इस लौकिक ऋषि के गोत्र में आगे कौत्स हुए।

निरुक्त (२.११) में औपमन्यव आचार्य स्तोमों के द्रष्टा को ऋषि कह रहे हैं। और इस प्रकरण में कुत्स ऋषि को स्तोमों का कर्त्ता बतला रहे हैं। द्रष्टा और कर्त्ता में बहुत भेद हैं। यह दिव्य कुत्स स्तोमों=छन्दों को अन्तरिक्ष में विस्तृत करता है। पार्थिव ऋषि इन स्तोमों को अपने हृदय में देखते हैं।

ऋग्वेद में पाठ है—

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत ॥ —ऋ० १०.६६.१४ ॥

सुपर्णा वाचमक्रत ॥ —ऋ० १०.९४.५ ॥

देवीं वाचमजनयन्त देवाः ॥ —ऋ० ८.१००.११ ॥

इनका भाव यह है कि ये वसिष्ठ और सुपर्ण आदि दिव्य ऋषिगण जो आदित्य की रश्मियों में निवास करते हैं, वे ही अन्तरिक्ष में वैदिक छन्दों को जन्म देने में निमित्तकारण बनते हैं। इस अन्तरिक्ष में उत्पन्न वाक् का पार्थिव ऋषि श्रवण करते हैं। यास्क के मतानुसार सत्तावन प्रकार की देवी वाक् अन्तरिक्ष में प्रथम उत्पन्न हुई थी। आर्य जाति में प्राचीन काल से ही ज्ञान की महती प्रशंसा रही है। राम के राज्य में तथा अश्वपति के राज्य में कोई अविद्वान पुरुष नहीं था। योगनिष्ठ देवल अज्ञान, संशय और मिथ्या ज्ञान की बहुत निन्दा करता है।

यास्क स्वयं कहता है—**भूयविद्यः प्रशस्यो भवति।**

स्मृति का वचन है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥
यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥

अर्थात् जो वेद को पढ़कर अर्थ नहीं जानता वह भार उठाने वाले खम्बे के समान है। अर्थ को जानने वाला ही सम्पूर्ण भद्र (कल्याण) को प्राप्त होता है। वह ज्ञान के द्वारा पापों को धोकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

जिसे अर्थ ज्ञान के बिना वेद कण्ठस्थ मात्र हैं। वह उस अग्नि रहित शुष्क इन्धन के समान हैं जो प्रकाश नहीं कर सकता। ज्ञानाग्नि से ही पाप दग्ध होते हैं। यास्क [ऋ० १०.७१.४] का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

अप्येकः पश्यन्न पश्यति वाचम्। अपि च शृण्वन्नं शृणोत्येनाम्। अप्येकस्मै तन्वं विसस्त्रे। इत्यर्थज्ञ प्रशंसा।

अर्थात् कोई वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता। कोई सुनता हुआ भी नहीं सुनता। और किसी के लिए वाणी अपने सारे रहस्य प्रकट कर देती है। यह ऋक् में अर्थ ज्ञान की ही प्रशंसा है।

वाणी को कोई कैसे देख सकता है? इस प्रश्न का उत्तर स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य और उस समय में इङ्गलैण्ड आक्सफोर्ड विश्व विद्यालय के संस्कृत अध्यापक श्री पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा ने जर्मन देश में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्या विशारदों की सभा में दिया था कि लिपिबद्ध पाठ को आँखों से देख कर पढ़ना ही वाणी का दर्शन है।

वाणी का शरीर अथवा स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का उत्तर मन्त्र तथा ब्राह्मणों में मिलता है।

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय (१.१२१) में इसे ऋचा का प्रतीक कहा है। जिसका अर्थ है कि वाणी ने सब भुवनों को उत्पन्न किया।

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथकस्थितौ। —वाक्यपदीय ॥

अर्थात् एक ही आत्मा (वाणी) के शब्द और अर्थ ये दो सदा अपृथक रहने वाले भेद हैं। यही वाक् का शरीर या स्वरूप है।

अति प्राचीन मानवधर्म शास्त्र का भी यही मत है—

वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ॥

—मनु० ४.२५६ ॥

अर्थात् सभी अर्थ वाणी में नियत है। सभी का मूल वाक् है। वाक् से ही सभी अर्थ प्रकट हुए।

आर्य परम्परा के अनुसार शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। वार्तिककार कात्यायन ने लिखा है—**सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे।**

कालिदास भी उनके स्वर में स्वर मिला कर कहता है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागार्थ प्रति पत्तये।

अर्थात् वाक् (शब्द) और अर्थ संपृक्त साथ-साथ संयुक्त हैं। वाक् अर्थ की और अर्थ वाक् की प्रतीति कराता है। दिव्य ऋषि अन्तरिक्ष में इस दैवी वाक् को उत्पन्न करते हैं।

वैदिक विज्ञान के अनुसार शब्द और अर्थ एक साथ प्रकट हुए। वाक् का 'अर्थ' स्थूल शरीर है तथा शब्द सूक्ष्म शरीर है। अर्थ और शब्द की एक ही आत्मा है—वाक्।

तैत्तिरीय सं० (५.३.६) का वचन है—

रश्मिः इत्येव आदित्यम् असृजत।

अर्थात् रश्मिः, इस शब्दध्वनि के साथ ही आदित्य सृजा गया। यास्क के मतानुसार सूर्य में दिव्य आपः निरन्तर गतियुक्त हैं। और वे दिव्य स्वर उत्पन्न करते हुए विभिन्न प्रकार के छन्दों को पैदा कर रहे हैं।

५. निरुक्त (३.१७) में यास्क निम्न ऋक् की व्याख्या में लिखते हैं—

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्॥

—ऋ० १.४५.३॥

प्रियमेघः, अत्रि, विरूप, अङ्गिरा—यथैतेषामृषीणामेवं प्रस्कण्वस्य शृणु ह्वानम्। प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः। कण्व प्रभवः। यथा प्राग्रम्।

अर्थात् प्रिय मेघ, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा ऋषियों के समान, हे महाव्रत जातवेद! कण्व के पुत्र, प्रस्कण्व की पुकार को भी सुनो। यास्क ने ये प्रियमेघादि ऋषियों के नाम गिनाये हैं। इसके आगे वे लिखते हैं—**अर्चिषि भृगुः सम्बभूव। भृगुर्भृज्यमानो न देहे। अङ्गारेष्वङ्गिराः।**

यह जातवेद मध्यमस्थानी अग्निः है। आदित्य में जब ज्वालायें थी तब वहाँ भृगु उत्पन्न हुआ। वह ज्वालाओं में पकता हुआ भी जला नहीं।

ज्वालाओं के पश्चात् जब अङ्गारे रह गये तब अङ्गिरा उत्पन्न हुआ। वस्तुतः भृगु और अङ्गिरा अग्नि के ही रूप हैं।

वेद स्वयं कह रहा है—**त्वं हि अग्ने प्रथमो अङ्गिराः ऋषिः।**

तथा ऐ०ब्रा० ३.३४ में कहा है—

येऽङ्गारा आसन् ते अङ्गिरसो अभवन्।

अर्थात् अङ्गार ही बाद में अङ्गिरस बन गये। भृगु और अङ्गिरा के पश्चात् अत्रि उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वैखानस और भरद्वाज उत्पन्न हुवे। यह सब आधिभौतिक वर्णन है। अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले भूत विशेषों की ये संज्ञायें हैं।

६. लुब्धमृषिं नयन्ति पशुं मन्यमानाः। —निरु० ४.१४॥

अर्थात् पशु मानकर लोभी ऋषि (द्युलकस्थ विश्वामित्र) को ले जा रहे हैं।

७. इदं च मे अदादिदं च मेऽदादित्यृषिः प्रसङ्ख्यायाह।

अर्थात् यह वेद ज्ञान ईश्वर ने मुझे दिया है तथा उसी ने मुझे वेदार्थ ज्ञान भी दिया है—ऐसा विचार करके विवेक से ऋषि बोले। ईश्वर कृपा से ही वेद ज्ञान पद-पदार्थ का बोध ऋषियों को होता है। तदनन्तर मानवमात्र के कल्याण के लिए वे उसका अन्यों को उपदेश करते हैं।

८. उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम्॥

—ऋ० १.१२४.४॥

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए यास्क ने लिखा है—

उषा आदित्य को वक्ष के समान नोधा की भाँति प्रकट करती है। नोधा ऋषि भवति=नोधा ऋषि है। वह स्तवन को धारण करता है। स्तुतियों से वह जैसे अपनी कामनाओं को प्रकट करता है उसी प्रकार उषा रूपों को प्रकट करती है।

नोधा भी कोई दिव्य ऋषि हैं जिसका यास्क को ज्ञान था।

ऋग्वेद प्रथम मण्डल में सूक्त ५८ से लेकर ६४ तक नोधा ऋषि

के हैं। ६१वें सूक्त के १४वें मन्त्र में कहा है—

सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः॥ —ऋ० १.६१.१४॥

अर्थात् नोधा ऋषि तत्काल वीर्यवान् हो गया।

ताण्डय ब्राह्मण (७.१०.१०) में लिखा है कि देवों ने वेद मन्त्रों का विभाग करते हुए कक्षीवान् के पुत्र नोधा को एक साम दिया। वह साम, नौधस साम कहलाया। उस दिव्य कक्षीवान् के नाम पर किसी पार्थिव ऋषि ने भी अपना नाम कक्षीवान् रख लिया।

यह दिव्य नोधाः ६१वें सूक्त की १०वीं ऋक् में कह रहा है—

गा न व्राणा अवनीरमुञ्चत्॥ —ऋ० १.६१.१०॥

अर्थात् वृत्र से आवृत की हुई हमारी गौवों ने रक्षा करने वाली आपः को छोड़ा। ये गौवें कोई पार्थिव गौवें नहीं हैं, अपितु ये मरूतों की रश्मियाँ ही हैं। जिन्होंने आपः छोड़ी। मरूत आपः को चुवाते हैं। जल वर्षाते हैं।

अग्निर्वा इतो वृष्टिमीहे। मरूतोऽमुतश्च्यावयन्ति।

—मै०सं० २.१.८॥

अर्थात् अग्नि यहाँ से वर्षा को ले जाता है। और मरूत उस वर्षा को कराते हैं।

गौ शब्द वेद में रश्मि अर्थ में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। रश्मियाँ पर्वों से युक्त होती हैं। इसी कारण एक-एक रश्मि के दो-दो वर्णों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में किया गया है—

एकैकस्य रश्मेर्द्वौ द्वौ वर्णौ भवतः। —गोपथ ब्रा० ६.६॥

भावार्थ—रश्मियों के अपने-अपने वर्ण होते हैं। उन वर्णों के सन्धि स्थान को ही रश्मियों का पर्व कहा गया है।

भगवान् यास्क का सूक्ष्म दर्शन अत्यन्त महान् है। अपने निरुक्त में जहाँ भी उसने दिव्य ऋषियों का स्मरण किया है, वहीं उनके नामों के व्याख्यान के समय वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया है। क्योंकि वे दिव्य ऋषि अनादि काल से वर्तमान हैं। यथा—

ऋषिः कुत्सो भवति (३.११)।

नोधा ऋषिर्भवति (४.१६)।

च्यवन ऋषिर्भवति (४.१९)।

ऋषिर्नदो भवति (५.२)। आदि।

किन्तु जब ऐतिहासिक ऋषियों की चर्चा करते हैं तो वहाँ भूतकाल की क्रिया-बभूव का प्रयोग करते हैं। इससे दिव्य ऋषियों और ऐतिहासिक ऋषियों का भेद स्पष्ट हो जाता है।

९. च्यवन पद की व्याख्या में यास्क ने लिखा है—

च्यवन ऋषिर्भवति। च्यावयिता स्तोमानाम्।

अर्थात् स्तोमों के चुवाने वाला=निकालने वाला च्यवन ऋषि कहलाता है। इस पद को कहने वाली ऋचायें वेद में मिलती हैं। यथा—

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः॥

—ऋ० १०.३९.४॥

अर्थात् तुम दोनों (अश्वियों) ने स्तोम चुवाने वाले पुराने रथ को छील कर चलने के लिए पुनः नया बना दिया है। यह सब अलौकिक वर्णन है।

१०. **सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।**
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥

—ऋ० १.१६४.२॥

इस ऋक् के भाष्य में यास्क लिखते हैं—

एकोऽश्वो वहति सप्त नामादित्यः। सप्तास्मै रश्मयो रसानभिसन्नामयन्ति। सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वा। इदमपीतरं नामैतस्मादेव। अभिसन्नामात्। —नि० ४.२७॥

अर्थात् एक आदित्य रूपी अश्व सप्त नाम रश्मियों को ले जाता है। अथवा सात रश्मियाँ इसके लिए रसों को सब ओर से लाकर झुकाती

हैं। अथवा सात ऋषि इसकी स्तुति करते हैं। इसलिए यह आदित्य सप्तनामा कहा जाता है।

पीछे हम लिख आये हैं कि सूर्य रश्मियों में दिव्य ऋषियों का वास है। वे दिव्य सप्त ऋषि स्तोमों के द्वारा स्तुति करते रहते हैं। इस हेतु से भी आदित्य को वेद में सप्त नामा पद से स्मरण किया है। ऋ० २.१२.१२ में—**सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्**—पदों द्वारा सूर्य को सप्तरश्मि कहा है। इस मन्त्र की व्याख्या जै० अरण्यक (१/२८/७) में—**सप्त होता आदित्यस्य रश्मय**—इन शब्दों में की गई है। ये सातों रश्मियाँ सूर्य के एक चक्र रथ में जुड़ी रहती हैं। रश्मियाँ ही उसके अश्वों के रूप में होती हैं। ऋ० (१.१६४.१३) में कहा गया है कि—

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः॥

अर्थात् उस सूर्य का अक्ष बहुत भार वाला होकर भी सदा घूमता हुआ कभी तप्त नहीं होता।

११. ऋषिर्नदो भवति। नदतेः स्तुतिकर्मणः॥ —नि० ५.२॥

नदस्य मा रुधतः काम आगन्॥ —ऋ० १.१७९.४॥

नदनस्य मा रूधतः काम आगमत्। संरूद्धप्रजननस्य ब्रह्मचारिणः। इत्यृषिपुत्र्या विलपितं वेदयन्ते॥

अर्थात् ऋषि नद कहलाता है—स्तुति कर्म करने से। स्तुति करने वाले जितेन्द्रिय ऋषि को देखकर कामनी का काम जागृत होता है। यह ऋषि पुत्री का विलाप है—ऐसा कुछ आचार्य लोग बतलाते हैं। यास्क का अभिमत है कि इस यमयमी संवाद में भाई बहिन का विवाह निषिद्ध किया गया है।

ऋ० दशम् मण्डल का दसवाँ सूक्त यम-यमी संवाद है। यम यमी की प्रार्थना का निषेध करता है।

बृहद्देवता में शौनक ने लिखा है—

मैथुनार्थमभीप्सन्तीं प्रत्याचष्टे यमीं यमः॥ —बृहद्० ६.१५४॥

अर्थात् मैथुन की कामना करती हुई यमी के प्रति यम कहता है। हमें विचार करना चाहिए कि ये यम यमी कौन है? वैदिक साहित्य में इनके स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है—

अग्निर्वाव यमः इयं (पृथिवी) यमी॥ —तैत्ति०३.३.८॥

यजुर्वेद (१२.६३) के व्याख्यान में याज्ञवल्क्य शतपथ में लिखते हैं—

अग्निर्वै यमः। इयं [पृथिवी] यमी। आभ्यां हीदं सर्वं यतम्॥

—शत० ७.२.१.१०॥

स्वयं यास्क ने लिखा है—

अग्निरपि यम उच्यते। —नि० १०.२०॥

अर्थात् अग्नि को ही यम कहते हैं। पृथिवी यमी है।

यजुर्वेद (३७.११) के व्याख्यान में पुनः शतपथ का लेख है—

एष वै यमो य एष (आदित्यः) तपति। एष हदिं सर्वं यमयति। एतेनेदं सर्वं यतम्॥ —शत० १४.१.३.४॥

अर्थात् (अग्नि का बृहत् रूप) यह सूर्य ही यम है। सारे जगत् में गति का कारण यह सूर्य ही है।

ऋ० (१०/१३५/१) के द्वितीय पाद

देवैः संपिबते यमः के व्याख्यान में यास्क लिखते हैं—

देवैः संगच्छते यमः। रश्मिभिरादित्यः।

अर्थात् देवों=रश्मियों के साथ आदित्य संगत होता है। मैक्डानल का अर्थ देखिये—Yama Drinks Together with the Gods.

अर्थात् यम ने ईश्वर के साथ मिलकर सुरापान किया।

आदित्य का रश्मियों के साथ जुड़ना सृष्टि के आदिकाल की एक महान् वैज्ञानिक घटना है जिसका यास्क ने उल्लेख किया है। कहाँ यास्क का आर्षज्ञान और कहाँ मैकडानल का काक प्रलाप।

यजु० ३८.९ के व्याख्यान में याज्ञवल्क्य ने लिखा है—

अयं वावयमो योऽयं [वायुः] पवते॥ —शत० १४.२.२.११॥

अर्थात् यह पवित्र करने वाला वायु भी यम कहलाता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि अग्निः, वायु और आदित्य आदि देवों का नाम यम है। और यह पृथिवी यमी है। अतः वेद में यह यम-यमी संवाद आलंकारिक रूप में अग्नि और पृथिवि अथवा आदित्य और पृथिवी अथवा वायु और पृथिवी का परस्पर संवाद है।

मैत्रायणी संहिता का प्रवचन इस आख्यान पर अच्छा प्रकाश डालता है—

यमो वा अम्रियत। ते देवा यम्या यममपाब्रुवन्। तां यदपृच्छन्। साब्रवीत्। अद्यामृतेति। ते अब्रुवन्। न वा इयम् इमम् इत्यं मृष्यते। रात्रीं सृजावहा इति। अहर्वावतर्हि आसीत् न रात्रीः। ते देवा रात्रिमसृजन्त। ततः श्वस्तनम् अभवत्। ततः सा तममृष्यत॥

—मै०सं० १.५.१२॥

अर्थात् देवों ने यमी (पृथिवी) से अपशब्द कहकर पूछा कि क्या यम (अग्नि) मर गया। उत्तर में वह बोली—आज तो वह जीवित है। वे देव कहने लगे कि यह उसको इस प्रकार नहीं मरने देगी। रात्री को उत्पन्न करना चाहिए। तब तक रात्री की उत्पत्ति नहीं हुई थी केवल दिन ही था। उन देवों ने रात्री का सृजन किया। उससे निद्रा आ गई। तब रात्री ने यम को मार दिया।

यह रहस्य उस काल का है जब पृथिवी सूर्य के अति निकट थी। मानव तो अभी जन्मा भी नहीं था। आदित्य पृथिवी से दूर जा रहा था, किन्तु राशि परिभ्रमण में तब तक स्थिर नहीं हुआ था। इसी अभिप्राय को ताण्डय ब्राह्मण में कहा है—

एतेन वै यमी यमं स्वर्गं लोकम् अगमयत्॥ ११.१०.२२॥

यमी (पृथिवी) ने यम (आदित्य) को स्वर्ग लोक (द्यौ लोक) को पहुंचाया। ऋ० १.७.३ में कहा है—

इन्द्रो दी॒र्घाय॒ चक्ष॑स॒ आ सूर्यं॑ रोहयद् दि॒वि।

अर्थात् इन्द्र ने सूर्य को द्युलोक में चढ़ाया।

तैत्तिरीय सं० (७.३.१०) में कहा है—

असावादित्योऽस्मिन् लोक आसीत्।

तं देवाः पृष्ठैः परिगृह्य सुवर्गं लोकम् अगमयन्।

मै० सं० (१.११.७) में भी ऐसा ही उल्लेख है—

इह वा असौ आदित्य आसीत्। तमितोऽध्यमुं लोकम् अहरन्।

अर्थात् यह सूर्य पहले पृथिवी के पास ही था देवों ने उसे ऊपर चढ़ा कर द्युलोक में स्थित किया। यास्क के अनुसार जब आदित्य वेग से ऊपर चढ रहा था तो अनेक पदार्थों को जीर्ण करता जा रहा था और अनेकों पदार्थों को निगलता जा रहा था।

इस प्रकरण में यह भी ध्यान देने योग्य है कि निरुक्त (११.२२) से **अथातो मध्यस्थानाः स्त्रियः** इन शब्दों के साथ मध्यस्थानीय स्त्रियः इन शब्दों के साथ मध्यस्थानीय स्त्रियों का प्रकरण आरम्भ होता है। वहाँ १९ नामों का उल्लेख है। जिनमें अदितिः भी है और यमी भी। मध्यस्थानीय=अन्तरिक्षस्थ यमी ऐतिहासिक स्त्री कैसे हो सकती है? वैदिक ज्ञान से अनभिज्ञ मैकडानल आदि मानुषी इतिहास की वेद में कल्पना करते हैं। जो निराधार है। मैक्डानल वैदिक रीडर में लिखता है—

As the first father of Mankind and the first of those that died, Yama appears to have orignally been regarded as a mortal who become the chief of the souls of the departed. (P.-212)

अर्थात् यम मानव का आदि पिता था। वह सबसे पहले मरा।

ऐसा लेख इतिहास की अनभिज्ञता का परिणाम है। मानुषी इतिहास में त्रेता युग के आरम्भ में विवस्वान् के पुत्र और पुत्री का नाम यम और यमी था। इनका पिता विवस्वान, कश्यप और माता अदिति थी। अतः

यम मानव का आदि पिता कैसे हो सकता है?

इस मानुषी यम और देव यम का पार्थक्य शौनक ने बृहद्देवता में दर्शाया है—

ऋषिर्विवस्वतः पुत्रं तेनाहयमो यमम्॥ बृ० २.४८॥

अर्थात् यम ऋषि उस विवस्वान् के पुत्र यम को कहता है। यहाँ स्पष्टतः दो यम पृथक्-पृथक् हैं। एक यम नाम के ऋषि है दूसरा यम विवस्वान् का पुत्र है।

१२. इन्द्र ऋषीन् पप्रच्छ। दुर्भिक्षेकेन जीवतीति। तेषामेकः प्रत्युवाच। शंकट शाकिनी गावो जालम् स्यन्दनं वनम्। उदधि पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव वृत्तयः। इति (निरु० ६.५)

अर्थात् इन्द्र ने सप्तर्षियों से पूछा कि दुर्भिक्ष में व्यक्ति किस साधन से जीवित रह सकता है? ऋषियों में से एक ने उत्तर दिया कि दुर्भिक्ष के समय ९ प्रकार के साधनों से जीवन रक्षा होती है—१. गाड़ी से, २. शाकभाजी पैदा करने योग्य भूमि से, ३. गौ से, ४. जाल से, ५. बहते हुए जल अथवा झरने आदि के जल से, ६. वन से, ७. समुद्र से, ८. पर्वत से, ९. राजा के आश्रय से। ये नौ आपत्ति समय में जीवन रक्षा के साधन होते हैं।

१३. ऋग्वेद अष्टम मण्डल के चतुर्थ सूक्त में मन्त्र १९ से २१ तक कुरूङ्ग की दान स्तुति है। यह कुरूङ्ग अन्तरिक्षस्थ राजा था। यदि वह सदा रहता तो यास्क उसका उल्लेख भवति क्रिया से करता। किन्तु यास्क ने यहाँ बभूव क्रिया का प्रयोग किया है। जैसे कि निरुक्त (४.६) में भी एकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवुः का प्रयोग हुआ है। यह कुरूङ्ग दिविष्टिषु=द्युलोक में ईश्वर प्राप्ति का इच्छुक था। वह सदैव शुभ कर्म करता था। इसलिए द्युलोक को प्राप्त हुआ। इसी हेतु यास्क ने बभूव क्रिया पद का प्रयोग किया है। कुरूङ्ग शब्द का निर्वचन करते हुए यास्क ने लिखा है—**कुरूगमनाद्वा। कुलगमनाद्वा।** अर्थात् कुरू को जाने वाला अथवा अपने कुल में चले जाने से वह कुरङ्ग कहलाया।

कुरूङ्ग का मूल स्थान द्युलोक में था। वह दान विशेष के लिए अन्तरिक्ष में आया तदनन्तर लौट कर पुंनः अपने कुल द्युलोक में चला गया। पार्थिव मनुष्यों की भाँति अन्तरिक्ष में भी मनस्वी तत्व रहे हैं। यदु, तुर्वश, द्रह्यु, अनु, पुरू आदि नाम अनारिक्षस्थ पदार्थों के ही हैं। कुरङ्ग भी उनमें से एक है। ये नाम ऋ० १.१०८.८ में आये हैं। महर्षि दयानन्द जी ने इन सभी नामों के यौगिक अर्थ दर्शाये हैं। वेद में ऐतिहासिक नामों की कल्पना अल्पज्ञ व्यक्ति ही कर सकता है।

१४. न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः॥

—ऋ० ८.६१.११॥

इस ऋक् की व्याख्या करते हुए यास्क लिखते हैं—

न पापा मन्यामहे। नाधनाः। न ज्वलनेन हीनाः।

अस्त्यस्मासु ब्रह्मचर्यमध्ययनं तपो दान कर्मेत्यृषिरवोचत्।

अर्थात् ऋषि बोले कि न तो हम पापी हैं। नहीं (अरायास) दानहीन, दान न दे सकने वाले निर्धन हैं और न ज्वलनहीन=अग्नि से, ज्ञान से, उत्साह से हीन हम स्वयं को मानते हैं। हम लोगों में ब्रह्मचर्य स्वाध्याय, तप और दानकर्म आश्रय पाते हैं।

इस सूक्त का ऋषि भर्गःप्रागाथ है। ब्रह्मचर्य, अध्ययन और दान ये तीन गुण छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध बतलाये गये हैं। यास्क ने इन तीनों के साथ तप भी जोड़ दिया है। निश्चय से ऋषि भर्ग प्रागाथ दिव्य विभूति हैं।

१५. जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्।

कद्ध स्थ हवनश्रुतः॥ —ऋ० ८.६७.५॥

अर्थात् हे आदित्यो! हमारी पुकार सुनकर दौड़ो। मरने से पूर्व जीवित बचा लो। इस ऋक् की व्याख्या में निरुक्त का पाठ है—

मत्स्यानां जालमापन्नानामेतदार्षं वेदयन्तो। —निरु० ६.२७॥

अर्थात् जाल में फसे हुए मत्स्यों का यह ऋषि-वचन हैं—ऐसा आचार्य बतलाते हैं।

प्रश्न है कि क्या मत्स्य भी ऋषि होते हैं? इसका उत्तर है कि हाँ, पार्थिव नदियों की भाँति अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में भी दिव्य नदियाँ बहती हैं। उन नदियों में का प्राण मत्स्य रूप में कार्य करते हैं। वे उन नदियों के जाल में फँसकर अपनी सत्ता खोने वाले होते हैं। उन्हीं की यह ऋक् है। सूर्य में दो ध्रुव हैं। एक उत्तर और दूसरा दक्षिण। सूर्य के उत्तरी ध्रुव से आदित्यः रश्मि समूह निकलता है तथा दक्षिण ध्रुव से आङ्गिरस। आदित्य रश्मि समूह उन मत्स्य रूपी प्राणों को बचा सकते हैं। अतः उनके बुलाने के लिए यह ऋक् है।

इस प्रकरण में अंहुर—पद की व्याख्या में यास्क निम्नाङ्कित ऋक् को उद्धृत करते हैं—

यह ऋक् मानव समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः अपने सुधी पाठकों के हितार्थ ऋक सहित उसकी व्याख्या हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥

—ऋ० १०.५.६॥

अर्थात् कवियों ने मानव जीवन के लिए सात मर्यादाओं का उपदेश किया है। उनमें से व्यक्ति यदि एक का भी उलंघन करता है तो पाप से युक्त हो जाता है। फिर दो-तीन या सब मर्यादाओं को तोड़ने वाले की क्या गति होगी? यह कहना ही कठिन है। इसलिए हे मनुष्यों! जैसे धरूणों (अरों) के मध्य धूरा स्थिर रहता है वैसे ही जीवन पथ पर आगे बढते हुएं धर्म मार्ग पर स्थिर रहो।

सात मर्यादायें जो यास्क ने गिनाई हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. स्तेयम्=चोरी करना, २. तल्पारोहणम्=व्यभिचार, ३. ब्रह्महत्याम्=वेदपाठी ब्राह्मण की हत्या, ४. भ्रूणहत्याम्=गर्भहत्या, ५. सुरापानम्=मदिरापान, ६. दुष्कर्म का पुनः पुनः आचरण तथा, ७. पाप करके झूठ बोलना।

ऋग्वेद में इस मन्त्र से आगे वाला मन्त्र कह रहा है कि इस पृथिवी पर दो मार्ग हैं एक सद्मार्ग एक असद्-मार्ग। परमेश्वर सद्मार्ग पर चलने वाले जीवात्मा का कल्याण करता है। पाप मार्ग पर जाने वाले, दुर्गति को प्राप्त होकर इस संसार सागर में गोते खाते हैं। सद्मार्ग को ही स्वस्ति पथ या श्रेय मार्ग कहते हैं। श्रेय मार्ग के विषय में विस्तार से जानने के लिए हमारी स्वस्ति पथ पुस्तक पढ़ें।

१६. निरुक्त (६.३०) में यास्क ने पराशर और वशिष्ठ का उल्लेख किया है। इन्द्र को भी पराशर कहा है। क्योंकि वह राक्षसों को दूर मार भगाता है। ये दिव्य पराशर व वशिष्ठ ऋषि हैं। ऐतिहासिक वसिष्ठ से भी पराशर नाम का पुत्र जन्मा था।

१७. निरुक्त के दैवत काण्ड में यास्क लिखते हैं—

यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्त्स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। —नि० ७.१॥

अर्थात् ऋषि जिस कामना से युक्त होकर जिस देवता को किसी बल अथवा कर्म की इच्छा से स्तुति करता है तो उस देवता को कहने वाला ही वह मन्त्र होता है। अर्थात् मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय ही मन्त्र का देवता कहलाता है।

महाभारत शांति पर्व (३३५.४९) में कहा है—

स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदाः सृष्टाः स्वयंभुवा।

अर्थात् स्वयंभू परमेश्वर ने देवों की स्तुति की कामना से वेदों की रचना की। यहाँ स्तुति का अभिप्राय है पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव आदि का कथन करना। देवों का देव महादेव तो ईश्वर है। अतः उसकी स्तुति भी वेद मन्त्रों में अनायास ही हो जाती है।

इसीलिए चरक के शारीरिक सूत्र में कहा गया है—

तत्तु समन्वयात्॥ —चरक शारीरिक १.१.४॥

अर्थात् उस ब्रह्म का सम्पूर्ण वेद वचनों के साथ समन्वय है। इसलिए किसी भी देव की स्तुति हो उन मन्त्रों में ईश्वर की स्तुति भी

स्वतः ही हो जाती है। क्योंकि सभी देवताओं का आधार तो वह ईश्वर ही है।

वेदों में दो रूपों वाले ऋषि हैं। प्रथम दिव्य ऋषि जो अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक में स्थित हैं। दूसरे ऐतिहासिक मानुषी ऋषि जैसे अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा आदि जिनके हृदय में सृष्टि के आदि में वेदों का प्रकाश हुआ। इन ऋषियों ने भी अपने ये नाम वेद से लेकर ही रक्खे थे। इतिहास के अनुसार अनेक ऋषियों ने वेद के अनुसार अपने नाम बदल दिये थे। यथा—च्यवन का पूर्व नाम ऋष्टिषेण था। आत्रेयी अपाला का तिलका, विश्वामित्र का विश्वरथ, काशिपति दिवोदास का भीमरथ अपना पूर्व नाम था। भीष्म के पिता शन्तनु का भी पूर्व नाम महाभिष था। दिव्य ऋषियों की साक्षी स्वयं वेद दे रहा है।

ऋषयः सप्त दैव्याः। —ऋ० १०.१३०.७॥

अर्थात् ये सप्त ऋषि दिव्य हैं।

निरुक्त (७.१) में जो यत्काम ऋषिः कहा है यहाँ ऋषि पद से उन्हीं दिव्य ऋषियों का ग्रहण करना चाहिए। जो ईश्वर कृपा से अन्तरिक्ष में या द्युलोक में वेद मन्त्रों को छन्दों के रूप में उत्पन्न करने वाले थे। उन्हीं ऋषियों के द्वारा देवता भी निश्चित हुए थे।

१८. वेद मन्त्रों में कहीं स्तुति है तो कहीं आशीर्वाद है। कहीं शपथ तो कहीं अभिशाप है। कहीं किसी भाव की आचिख्यासा (कहने की इच्छा), तो कहीं परिदेवना (विलाप) है। कहीं निन्दा है तो कहीं प्रशंसा है। इन सबके उदारहण देते हुए अन्त में यास्क लिखते हैं—

एवमुच्चावचैरभिप्रायैः ऋषीणां मन्त्र दृष्टयो भवन्ति॥

—निरु० ७.३॥

अर्थात् ये स्तुति निन्दा आदि जो ऊपर बतलाये हैं—इन ऊंचे और नीचे अभिप्रायों से युक्त ऋषियों की मन्त्र दृष्टियाँ होती हैं।

यास्क ने मन्त्रों में उपर्युक्त ८ प्रकार के भेद दर्शाये हैं।

शौनक के बृहद्देवता के अनुसार मन्त्रों के ३५ प्रकार हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण पूर्व भाग ३३.४३ के अनुसार मन्त्रों के २४ भेद हैं।

अश्व, मण्डूक, मत्स्य, विपाट् शुतुद्री आदि अदेवता वाची पदों का मन्त्रों में जहां देवतावत् प्रयोग हुआ है वहाँ वेद के अध्येता यह न समझे कि ये अश्व आदि मूल देवता के क्षेत्र के बाहर से आने वाले भिन्न पदार्थ हैं। यास्क कहता है कि वे आत्म जन्मानः है अर्थात् मुख्य देवता से उत्पन्न ही उन्हें समझना चाहिए। जैसे आदित्य की स्तुति में जब उसके अश्व और रथ आदि का वर्णन आता है तो वे अश्व और रथ आदि आदित्य से ही जन्में हैं—ऐसा समझना चाहिए इसी प्रकार मण्डूक, मत्स्य, विपाट् शुतुद्री आदि के विषय में भी समझना चाहिए। इन्द्र और मरूतों के आयुध आदि भी उन्हीं से जन्में हुए जानना चाहिए। वे बाहर से आये हुवे कोई अन्य देव नहीं। इसीलिए यास्क ने लिखा है—

१९. महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधास्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।
अपि च सत्त्वानां प्रकृति भूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः।

—निरु० ७.४॥

अर्थात् देवता के अत्यन्त ऐश्वर्य युक्त होने से उस एक ही आत्मा की बहुत प्रकार से स्तुति की जाती है। अन्य देव उस आत्मा के ही अङ्गभूत होते हैं।

पदार्थों के मूल के महत्व से ऋषि स्तुति करते हैं। अर्थात् एक ही प्रकृति मूल होने से सब नाम एक दूसरे से आबद्ध मानकर ही ऋषि उन की स्तुति करते हैं।

सब पदार्थों के मूल में एक ही प्रकृति होती है। पदार्थों की उत्पत्ति में अलग-अलग कारण होते हैं। जैसे—कोई कर्म से उत्पन्न होता है तो कोई पदार्थ की आत्मा से। जैसे—सूर्य की आत्मा ही उसका रथ है। आत्मा ही अश्व है, आत्मा ही आयुध है, आत्मा ही उसके इषवः (तीर) हैं। सूर्य देव की आत्मा ही ये सब कुछ हैं।

जो इस तथ्य को जानता है वही वेदार्थ के समझने में सक्षम है।

२०. अथोत कर्मभिर्ऋषिर्देवता स्तौति। वृत्रहा पुरन्दरः इति॥

—नि० ७.१३॥

यास्क का कथन है कि देवता के कर्मों से ऋषि देवता की स्तुति करता है। जैसे—इन्द्र को वृत्रहा अर्थात् वृत्र को मारने वाला तथा पुरन्दरः=पुर को दीर्ण, नष्ट करने वाला, इन नामों से पुकारते हैं। वृत्र का मारना और वृत्र के पुर को नष्ट करना ये इन्द्र के कर्म हैं। कर्म के अनुसार नाम लेकर इन्द्र की ऋषि स्तुति करता है। यास्क का कथन है कि वृत्रहा या पुरन्दर शब्द ही इन्द्र को कहने के लिए पर्याप्त हैं इनके आगे इन्द्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं। किन्तु वेद में अनेकत्र वैसे प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे—

इन्द्राय वृत्रघ्ने। —ऋ० ९.९८.१०॥

इन्द्राय वृत्रतुरे इन्द्रायाँ हो मुचे। —मै०सं० ३.१५.११॥

२१. निरुक्त (८.२) में द्रविणोदा पद की व्याख्या करते हुए अथर्ववेद का निम्न मन्त्र उद्धृत करते हैं—

ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः।

—अथर्व० ४.३९.९; मै०सं० १.२.७॥

अर्थात् द्रविणोदा अग्नि ऋषियों का पुत्र है और यह यज्ञों का अधिराज है।

यह ऋषियों का कर्म है। दिव्य ऋषि द्युलोक में दिव्य यज्ञ रचते रहते हैं। ये ऋषि यज्ञों में अग्नि को उत्पन्न करते हैं। **ते चैनं जनयन्ति**=वे ऋषि इस अग्नि को जन्म देते हैं। इसलिए यह ऋषियों का पुत्र कहलाता है। ऋषियों के द्वारा उत्पन्न हुआ यह अग्नि ही यज्ञों का अधिराज=शासक है। शास्त्रों में अन्यत्र भी कहा है कि **अग्निर्वै देवानाम् मुखम्।** अर्थात् अग्नि सब देवों में प्रधान है।

२२. निरुक्त (९.७) में एक ऋक् उद्धृत करते हैं—

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।

—ऋ० १०.३४.१॥

इस ऋक् की व्याख्या के अन्त में यास्क लिखता है—

ऋषेरक्षपरिद्यूनस्यैतदार्षं वेदयन्ते। [निरु० ९.७]

अर्थात् अक्षों से उदास हुए ऋषि का यह वचन है। इस मन्त्र में द्यूत निन्दा है। मन्त्रों में ऋषि द्यूत (जुवाँ) निन्दा तथा कृषि की प्रशंसा करते हैं।

२३. द्रुघण पद की व्याख्या में यास्क ने लिखा है—

द्रुघणः द्रुममयो धनः। तत्रेतिहासमाचक्षते-मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिर्वृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा सङ्ग्रामे व्यवहृत्याजिं जिगाय। तदभिवादिन्येषर्ग्भवति॥

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्।
येन जिगाय शतवत्सहस्त्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु॥

—ऋ० १०.१०२.९॥

अर्थात् द्रुघण=मुद्गर, वृक्षमय ठोस पदार्थ। इस विषय में इतिहास को कहते हैं—भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल ऋषि ने वृषभ और द्रुघण=मुद्गर को जोड़कर शर्तवाली दौड़ अथवा संग्राम को जीता। इसी अभिप्राय को कहने वाली उपर्युक्त ऋक् है।

यह ऋक् ऋग्वेद के दशम मण्डल के १०२वें सूक्त की है। इस सूक्त के विषय में शौनक बृहद्देवता में लिखता है—

प्रेतीतिहास सूक्तं तु मन्यते शकटायनः।
यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः॥
आजावनेन भार्म्यश्व इन्द्रासोमौ तु मुद्गलः।
अजयद् वृषभं युक्त्वा रोन्द्रं च द्रुघणं रथे॥

—बृह० ८.११-१२॥

अर्थात् प्र से आरम्भ होने वाले इस १०२वें सूक्त में शाकटायन इतिहास का स्वरूप देखता है। किन्तु यास्क इस सूक्त को द्रौघण अथवा इन्द्र की स्तुति परक मानता है। शौनक की दृष्टि में यह वैश्वदेव

सूक्त हैं। इस सूक्त से भार्म्यश्व मुद्गल ने अपने रथ में वृषभ तथा ऐन्द्र द्रुघण को जोड़कर आजि=शर्त में इन्द्र और सोम देवों को जीता। निश्चय से कहा जा सकता है कि वेद में इन्द्र सोम के जीतने वाला यह भार्म्यश्व मुद्गल आधि दैविक ऋषि हैं। उनका यह युद्ध भी दिव्य ही है। पार्थिव नहीं।

परन्तु यास्क का संकेत है कि ऐतिहासिक भार्म्यश्व मुद्गल भी एक मानव ऋषि हुआ है। पर वेद का भार्म्यश्व मुद्गल यह ऐतिहासिक मुद्गल नहीं है। यास्क ने मुद्गल शब्द के पांच निर्वचन दर्शाये हैं। यथा—मुद्गलो मुद्गवान्। मुद्गिलो वा। मदनं गिलतीति वा। मदङ्गिलो वा। मुदङ्गिलो वा। अर्थात् मूंग वाला, मूंगखाने वाला, काम को निगलने वाला, मद को निगलने वाला अथवा हर्ष को निगलने वाला मुद्गल कहलाता है। वेद में यदि यह किसी पुरुष विशेष का नाम होता तो वेदों का प्रकाण्ड पण्डित यास्क इस संज्ञा के पांच निर्वचन न दिखाते।

२४. तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे॥

—ऋ० ८.४१.२॥

अर्थात् मध्यम स्थानीय देव वरूण की स्तुति में यास्क उपर्युक्त मन्त्र को उद्धृत करते हैं। इस मन्त्र का भावार्थ है कि मैं उस वरूण देव की उत्तम वचनों से, पितरों के स्तोमों से तथा नाभाक की प्रशस्तियों से स्तुति करता हूँ। वह मध्यम स्थानी देव है। नदियों के प्रकट होने पर वह सात भगिनियों वाला हो जाता है। पाप बुद्धिवाले, हम से द्वेष करने वाले कोई न हों।

इस मन्त्र की व्याख्या में यास्क ने लिखा है—

ऋषिर्नाभाको बभूवः।

—निरु० १०.५॥

नाभाक नाम के ऋषि हुए हैं। क्या मन्त्रस्थ दिव्य नाभाक तथा ऐतिहासिक नाभाक दोनों पृथक्-पृथक् हैं? अथवा यह दिव्य नाभाक का ही संकेत है? मन्त्रस्थ नाभाक के विषय में तो मन्त्र स्वयं ही कह

रहा है—स मध्यमो। वह वरुण की प्रशस्ति करने वाला मध्यम स्थानी है। पितर भी माध्यमिक देवगण हैं।

२५. इन्द्र शब्द की व्याख्या करते हुए यास्क लिखते हैं—

इरां द्रुणाति, इरां ददाति, इरां दधाति, इरां दारयते इतिवा, इरां धारयते इति वा। इन्दवे द्रवति, इन्दौरमते, इन्धे भूतानीति वा। तद् यद् एनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्य इन्द्रत्वम् इति विज्ञायते। इदं करणादित्याग्रायणः। इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः। इन्दतेर्वैश्वर्य कर्मणः। इन्दन्छत्रूणां दारयिता वा। द्रावयिता वा। आदरयिता वा आदरयिता च यज्वानाम्॥

अर्थात् वह (इन्द्र) अन्न को अथवा पृथिवी को फाड़ता है, पृथिवी को देता है, पृथिवी को धारण करता है, उसे फाड़ता है अथवा धारण करता है, सोम के लिए दौड़ता है, सोम में रमण करता है, प्राणियों को प्राणों से प्रदीप्त करता है—यही इन्द्र का इन्द्रत्व है। आग्रायण आचार्य के मत में इन क्रियाओं के करने से वह इन्द्र है। औपमन्यव आचार्य कहते हैं कि वह ऐसा देखा जाता है, इसलिए इन्द्र है। उसमें ऐश्वर्य कर्म है। शत्रुओं को फाड़ने वाला तथा यज्ञ करने वालों को आदर देने वाला है।

इन्द्र की स्तुति परक आगे यास्क दो ऋचाएँ उद्धृत करते हैं—

अर्दर्दुरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन्॥

—ऋ० ५.३२.१॥

तथा च—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

—ऋ० २.१२.१॥

मन्त्रार्थ—हे इन्द्र! तू ने (उत्सम्) मेघ को (अद्दर्णा) फाड़कर उसमें (खानि) छेदों को (वि-असृजः) खोल दिया, तूने (अर्णवान्) जल युक्त (बद्बधानान्) बन्धे हुए मेघों को (अरम्णाः) बहा दिया, जो

तूने (महान्तम् पर्वतम्) महान् मेघ को खोला, तो जल की धारायें बहादी और दानव को मार गिराया। जो उत्पन्न होते हुए ही प्रधान बन गया, अपने कर्म कौशल से सब देवों को तिरस्कृत कर दिया, जिसके महान् बल के महत्व से द्यावा पृथिवी भी काँपते हैं, हे मनुष्यो! वही इन्द्र है।

इन्द्र की स्तुति में मन्त्र पुरस्सरण के पश्चात् यास्क ने लिखा है—

ऋषेर्द्दष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान संयुक्ता।

—नि० १०.१०॥

इसी बात का प्रतिपादन आगे निरुक्त [१०.४६] में भी किया गया है। जिसका अभिप्राय है—ऋषि जिस अर्थ का दर्शन (साक्षात्कार) करते हैं, उसे वे आख्यान का रूप देकर अभिव्यक्त करने में रूचि रखते हैं। वे वास्तविक आख्यान नहीं होते।

नि० [२.१६] में भी यास्क लिखते हैं—

तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।

अर्थात् वेद में उपमा के रूप में युद्धों का वर्णन है। ताकि लौकिक उपमा के द्वारा वेदार्थ को समझने में सरलता हो। जैसे—अन्तरिक्ष में इन्द्र वृत्रासुर को मार गिराता है। नैरूक्तों के मतानुसार इन्द्र सूर्य है तथा वृत्रासुर मेघ है। सूर्य मेघ को गिरा कर वर्षा कराता है। इसी को आख्यान का रूप देकर वेद में वृत्रासुर संग्राम बतलाया गया है।

निरुक्त [४.६] में भी यास्क ऐसा ही लिखते हैं—

तत्र ब्रह्म, इतिहासमिश्रं, ऋङ्‌मिश्रं, गाथामिश्रं भवति।

यहाँ यास्क का अभिप्राय है कि ऋ० १.१०५ सूक्त में मन्त्रों में ही इतिहास, मन्त्रों में ही स्तुति तथा मन्त्रों में ही गाथा का रूप भी मिलता है। मन्त्रों में ये इतिहास, गाथा, आख्यान, स्तुति आदि आधि दैविक तथा आधिभौतिक हैं। लौकिक नहीं—यह यास्क के शब्दों से स्पष्ट हैं।

२६. विश्वकर्मा—पद को दर्शाने वाली एक ऋक् यास्क उद्धृत करते हैं—

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः॥

—ऋ० १०.८२.२॥

अर्थात् विश्वकर्मा=सर्वस्यकर्त्ता, विशेष मन वाला, अपनी व्याप्ति से महान्, धारणकर्त्ता, जीवन विधाता, परमोत्परम तथा सबका द्रष्टा एक परमात्मा है। सभी भूतों के कार्य अन्तरिक्ष में आपः परमाणुओं के साथ तथा सभी इन्द्रियों (प्राणों) के कार्य अन्न के साथ मोद मनाते हैं। द्युलोक में सप्तर्षि सूर्य की रश्मियाँ हैं तथा मानव शरीर में इन्द्रियाँ (५ ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन और बुद्धि) हैं। इन रश्मियों से परे आदित्य है। शरीर में इन्द्रियों से परे आत्मा है। आत्मा में सब इन्द्रियाँ एकी भाव को प्राप्त होती है तथा आदित्य में सब रश्मियाँ एक होती हैं।

यास्क ने इस मन्त्र के आधिदैविक और आध्यात्मिक ये दोनों अर्थ दर्शाये हैं। इसके आगे वे लिखते हैं—

तत्रेतिहासमाचक्षते। विश्वकर्मा भौवन सर्व मेघे सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार। स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार। तदभिवादिन्येषर्ग्भवति।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्॥ —ऋ० १०.८१.१॥

यहाँ यास्क के इतिहास शब्द से मानव इतिहास नहीं समझना चाहिए। ऊपर की ऋक् में विश्वकर्मा को वे स्वयं सर्वस्य कर्त्ता कह रहे हैं तथा वायु को भौवन नाम से पूर्व लिख चुके हैं। आगे जो ऋक (१०.८१.६) उद्धृत की है उस में कहा है कि द्यौ और पृथिवी को भी यज में लगा दिया। द्यौ तथा पृथिवी को यज में लगाने वाला ईश्वर वा दिव्य विश्वकर्मा भौवन ही हो सकता है कोई मनुष्य नहीं हो सकता।

२७. सविता शब्द के व्याख्यान में यास्क लिखते हैं—

आदित्योऽपि सवितोच्यते। तथा च हैरण्यस्तूपे स्तुतः। अर्चन हिरण्यस्तूप ऋषिरिदं सूक्तं प्रोवाच।

अर्थात् आदित्य को भी सविता कहते हैं। वैसे ही हिरण्यस्तूप

ऋषि के सूक्त [ऋ० १०.१४९] में स्तुति किया गया है। सविता की स्तुति करते हुए हिरण्यस्तूप ऋषि ने यह सूक्त पढ़ा। यह हिरण्यस्तूप ऋषि मानव ऋषि नहीं दिव्य ऋषि है जिसका यह १४९वाँ सूक्त है। मन्त्रानुसार अङ्गिरा का पुत्र आङ्गिरस है। आङ्गिरस का हिरण्यस्तूप। तथा उस हिरण्यस्तूप का पुत्र अर्चन् हैरण्यस्तूप है। ये सब दिव्य हैं।

२८. प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे ......॥ —ऋ० १.१२९.६॥

इस ऋक् की व्याख्या करते हुए यास्क लिखते हैं—

अवस्रवेत् अघशंस क्षुद्रमिवावस्रवेत्। अभ्यासे भूयाँसमर्थं मन्यन्ते। यथाहो दर्शनीयाहो दर्शनीयेति। तत्परूच्छेपस्यशीलम्। परूच्छेप ऋषिः। पर्ववच्छेपः। परूषि परूसि शेपोऽस्येति वा।

अर्थात् पाप की प्रशंसा करने वाला क्षुद्र द्रव्य के समान नीच गति को प्राप्त होवे। उपर्युक्त मन्त्र में अवस्रवेत् पद दो बार प्रयुक्त हुआ है। किसी शब्द का बार-बार प्रयोग आधिक्य अर्थ को कहने में आचार्य लोग मानते हैं। जैसे अहो दर्शनीय, अहो दर्शनीय का अर्थ है अत्यन्त सुन्दर। इस प्रकार का कथन करना परूच्छेप का स्वभाव है। परूच्छेष ऋषि है। परूच्छेप कौन है? पर्ववत् शेष वाला अथवा जिसकी हर सन्धि में शेप है वह परूच्छेप है।

स्कन्द स्वामी ने लिखा है—**इन्द्र उ वै परूच्छेपः।**

अर्थात् इन्द्र ही परूच्छेप है। वही उपर्युक्त मन्त्र का ऋषि है। यहा परूच्छेप ऐतिहासिक ऋषि नहीं अपितु अन्तरिक्षस्थ है। यास्क के निर्वचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परूच्छेप पार्थिव मानव नहीं है।

२९. यास्क (११.१९) में लिखते हैं—

अङ्गिरसो नः पितरो नवगतयो नवनीतगतयोवा। अथर्वाणो भृगवः। सोम्याः सोम सम्पादिनः। तेषां वयं सुमतौ कल्याणे मनसि स्यामेति। माध्यमिको देवगण इति नैरूक्ताः। पितर इत्याख्यानम्। अथाप्यृषयःस्तूयन्ते॥

अर्थात् अङ्गिरस संज्ञा वाले हमारे पितर नई-नई गतियों वाले हैं।

अथर्वा, भृगव और सोम सम्पादन करने वाले हैं। हम उनकी कल्याणी मति में रहें। नैरुक्तों के अनुसार ये माध्यमिक देवगण हैं। ये सब पितर हैं—ऐसा आख्यान है। तथा ऋषि भी स्तुति किये जाते हैं।

३०. ऋ० (१०.६४.५) के सप्त होता पद की व्याख्या में यास्क ने लिखा है—

सप्त होता। सप्तास्मै रश्मयो रसानभिसन्नामयन्ति। सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वा। —निरु० ११.२३॥

अर्थात् सप्त होता। सात रश्मियाँ इसके लिए रसों को लाकर पूर्णतया झुकाती हैं। सात ऋषि इस दक्ष की स्तुति करते हैं।

आदित्य को ही दक्ष कहा जाता है। तथा अग्नि को अदिति भी कहते हैं। अदिति से दक्ष पैदा हुआ। और दक्ष से पुनः अदिति। (ऋ० १०.७२.४)

आदित्य की रश्मियों में सप्त ऋषि रहते हैं। वे उसकी स्तुति करते हैं। ये दिव्य ऋषि हैं। यह हम पहले भी लिख चुके हैं।

३१. निरुक्त (१२.३६) का पाठ है—

सप्त ऋषयो व्याख्याताः। तेषामेषा भवति—

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतोऽअस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ —यजु० ३४.५५॥

इस मन्त्र की व्याख्या में यास्क लिखते हैं—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे। रश्मय आदित्ये। सप्तरक्षन्ति सदमप्रमादम्। संवत्सरमप्रमाद्यन्तः। सप्तापनास्त एव स्वपतो लोकमस्तमितमादित्यं यन्ति। तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ। वाय्वादित्यौ। इत्यधिदैवतम् अथाध्यात्मम्। सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे। षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी। आत्मनि सप्त रक्षन्ति। सदमप्रमादम्। शरीरमप्रमाद्यन्ति। सप्तापनानीमान्येव स्वपतो लोकमस्तमितमात्मानं यन्ति। तत्र जागृतोःऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ। प्राज्ञश्चात्मा तैजश्च। इति आत्मगतिमाचष्टे।

अर्थात् शरीर में स्थित हुए सात ऋषि सदा प्रमाद रहित होकर इसकी रक्षा करते हैं। सातो व्याप्त होकर सोते हुए के लोक को प्राप्त होते हैं। यज्ञ में बैठे हुए, कभी न सोने वाले दो देव सदा जागते हैं।

आधिदैविक पक्ष में सात ऋषि आदित्य की सात रश्मियाँ हैं तथा आध्यात्मिक पक्ष में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि से सात ऋषि हैं। प्राज्ञ आत्मा और तैजस् परमात्मा ये दो देव सदा जागते हैं।

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥

—अथर्व० १०.८.९॥

इस मन्त्र में भी सात ऋषियों का उल्लेख है।

ऊपर आधार और नीचे को बलि=छेद वाला यह मानव का शिर है। इसमें बहुत प्रकार का यश भरा हुआ है। यहाँ सात ऋषि एक साथ बैठते हैं। वे इसकी रक्षा करते हैं। अध्यात्म में यहाँ भी सप्त ऋषि सात इन्द्रियाँ हैं। आदित्य में उदक रूपी यश भरा है। उसकी रश्मियाँ ही रक्षा करती हैं।

३२. निरुक्त परिशिष्ट में यास्क लिखते हैं—

अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः। अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरण एव तु निर्वक्तव्याः। न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा। पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति इत्युक्तं पुरस्तात्। मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। तस्माद्यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति॥ —निरु० १३.१२॥

अर्थात् यास्क कहते हैं कि हमनें यह मन्त्रार्थ में अपनी ऊहा दिखलायी है। मन्त्रार्थ जानने की विधि बतलाई है। मन्त्रार्थ का बोध चाहे श्रुति प्रमाण से हो, चाहे तर्क से हो, वह करना चाहिए। प्रकरण से पृथक् करके मन्त्रार्थ का यथार्थ बोध नहीं हो सकता। इसलिए मन्त्रार्थ

करते समय प्रकरण पर विचार करना चाहिए। जो व्यक्ति तप विहीन अनृषि हैं, उन्हें मन्त्रार्थ का यथार्थ बोध नहीं होता। तप विहीन अनृषि को मन्त्रार्थ बोध नहीं हो सकता। इसलिए मन्त्रार्थ ज्ञान के लिए शास्त्र अध्ययन में भूरि श्रम (तप) तथा योगाभ्यास से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर ऋषि पद को पाना अनिवार्य है। इसीलिए हमने पूर्व [नि० १.१६] में लिखा है कि परम्परागत विद्या ग्रहण करने वालों में अनेक विद्याओं में पारङ्गत विद्वान ही प्रशंसायोग्य होता है।

ऋषित्व की कामना करने वाले प्रत्यनशील तपस्वी वेदाध्यायी मनुष्यों ने देवों से पूछा कि अब हम लोगों में कौन ऋषि होगा, जो हमें वेदार्थ का बोध कराएगा? देवों ने उनके लिए तर्क ऋषि को दिया। इसलिए युक्ति युक्त तर्क से मन्त्रार्थ बोध करना चाहिए। इस हेतु से जो भी अनूचान=षडङ्गवेदवित् तर्क ऋषि द्वारा मन्त्रार्थ जानने के लिए जो ऊहा करता है—वही आर्ष वचन हो जाता है। तर्क, वेद-अवरोधी होना चाहिए। जो व्यक्ति वेद वेदाङ्गों में भूरिश्रमा व तपस्वी नहीं है, वह वेदार्थ में तर्क के स्थान पर कुतर्क प्रस्तुत करता है। इसलिए अर्थ का अनर्थ हो जाता है। पाश्चात्य विद्वान यही कुछ कर रहे हैं।

❑❑

त्रयोदश अध्याय

बृहद्देवता में ऋषि-ज्ञान की प्रशंसा

बृहद्देवता तथा सर्वानुक्रमणी का मूल यास्कीय निरुक्त है। अत: यास्कीय निरुक्त में ऋषि स्वरूप के अवलोकन के पश्चात् अब हम बृहद्देवता में ऋषि के स्वरूप विषय में शोनक का दृष्टिकोण दर्शाते हैं।

अपने शास्त्र का प्रारम्भ ही वे मन्त्र द्रष्टा ऋषियों को नमस्कार करके करते हैं। उनके शब्द हैं—

मन्त्रदृग्भ्यो नमस्कृत्वा समाम्नायानुपूर्वशः।

सूक्तर्गर्धर्चपादानाम् ऋग्भ्यो वक्ष्यामि दैवतम्॥ १.१॥

अर्थात् मैं सर्वप्रथम मन्त्र द्रष्टा ऋषियों को नमस्कार करके ऋग्वेद के परम्परागत पाठ के अनुसार सूक्त के देवताओं, ऋचाओं, अर्धऋचाओं, और ऋक्पादों का वर्णन करूगाँ।

तद्धितास्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।

विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च॥ १.३॥

अर्थात् मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के अभिप्रायों और उनसे सम्बद्ध संस्कारों को ठीक-ठीक जानने वाला व्यक्ति ही वेदार्थ विज्ञान तथा वेद में उपदिष्ट विविध कर्म कौशल का यथार्थ प्रतिपादन कर सकता है।

वेद मन्त्रों में देवताओं की स्तुति और उनसे प्राप्त होने वाले आशिष का वर्णन प्राय: देखने में आता है।

चतुर्भिप्रकारै स्तुतिर्भवति नाम गुण कर्म बन्धुभिः।

देवता की स्तुति चार प्रकार से की जाती है। यथा—उसके नाम का कीर्तन, देवता के स्वरूप का वर्णन, उसके कर्मों की प्रशंसा और देवता का स्तोता के साथ सम्बन्ध।

आशीर्वाद भी चार रूपों में प्राप्त होता है। स्वर्गायु प्रभु और धन।

स्वर्ग की कामना दर्शाने वाली ऋचाएँ वेद में बहुत कम है। आयु, पुत्र और धन की याचना करने वाली ऋचाओं की भरमार है।

शौनक की मान्यता के अनुसार तत्वदर्शी ऋषि चाहें मन्त्रों से स्तुति करते हों अथवा आशीष देते हों। मन्त्र से दोनों की ही अभिव्यक्ति हो जाती है क्योंकि दोनों बातें अर्थतः समान हैं।

मन्त्र द्रष्टा ऋषि और मन्त्र का देवता परस्पर सम्बद्ध हैं।

मन्त्र का देवता क्या है? शौनक के कथानुसार—

अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति।

प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः॥ १.६॥

अर्थात् किसी अर्थ की कामना करते हुए मन्त्र द्रष्टा ऋषि जिस किसी देवता की स्तुति करता है वही उस मन्त्र का देवता होता है। वेद के अन्दर सूक्तों का प्रयोग देखा जाता है। सूक्त क्या है? इस विषय पर शौनक लिखता है—

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते॥ १.१३॥

अर्थात् किसी ऋषि द्वारा उपदिष्ट वाक्य समूह को सूक्त कहते हैं। ऋषि, देवता, अर्थ और छन्द की दृष्टि से सूक्तों में विविधता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे सभी सूक्तों को जो किसी एक ऋषि की स्तुति के रूप में प्रकट हुए हैं। 'ऋषि सूक्त' कहते हैं। क्योंकि वे सब सूक्त एक ही ऋषि के सूक्त हैं। जहाँ तक एक विषय पूर्ण होता है उसे एक '**अर्थसूक्त**' कहते हैं।

जिन ऋचाओं का छन्द समान होता है उन्हें '**छन्द सूक्त**' कहते हैं।

ऋषि दृष्टि से 'ऋषि सूक्त', अर्थ दृष्टि से '**अर्थ सूक्त**' और छन्द की दृष्टि से '**छन्द सूक्त**' कहलाता है।

मन्त्र विषय में शोनक लिखता है—

मन्त्रा नाना प्रकाराः स्युः दृष्टा ये मन्त्र दर्शिभिः।

स्तुत्या चैव विभूत्या च प्रभावा देवतात्मन॥ १.३४॥

अर्थात् मन्त्र दृष्टा ऋषियों के द्वारा दृष्ट मन्त्र नाना प्रकार के होते हैं। देवताओं की स्तुति और विभूति आदि के वर्णन से उनमें भेद उत्पन्न होता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि जो भी भूत, भविष्यत और वर्तमान में स्थावर जङ्गम रूप में स्थित हैं, उस सब के प्रभव और प्रलय का कारण एक मात्र सूर्य है। यही प्रजापति है। जो सत और असत का कारण है।

एतद् भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा।
ऋषयो गीर्भिरर्चन्ति व्यञ्जितं नामभिस्त्रिभि ॥ १.६४ ॥

अर्थात् यह सूर्य ही सब भूतों सब लोकों में त्रिविध अग्नि रूप में स्थित है। ऋषिगण अपनी स्तुतियों से इसकी तीन नामों द्वारा अर्चना करते हैं।

पृथिवी पर इसे पवमान, अन्तरिक्ष में वनस्पति और द्युलोक में शुचि के नाम से पुकारते हैं।

ऋषिगण इस लोक में इसको अग्नि, अन्तरिक्ष में जातवेदस् तथा द्युलोक में शुचि के नाम से भी पुकारते हैं।

अपनी रश्मियों से यह सूर्य जलों का आकर्षण करके वायु के साथ यहाँ वर्षा करता है। इसलिए इसे इन्द्र कहते हैं।

पृथिवी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में इन्द्र और वायु तथा द्युलोक में सूर्य ये तीन लोकों के चार देवता हैं।

मन्त्रों में अमूर्त द्रव्यों को भी महर्षियों ने देवतावत् मानकर उनकी स्तुति की है। यह उन द्रव्यों की शक्ति की स्तुति है।

पदार्थों के विभिन्न नाम कैसे रख दिये जाते हैं। उदाहरणों के द्वारा शौनक बतलाते हैं—

अर्चिभिः केश्ययं त्वग्निः विद्युद्भिश्चैव मध्यमः।
असौ तु रश्मिभिः केशी तेनैनानाह केशिनः ॥ १.९४ ॥

अर्थात् पार्थिव अग्नि ज्वाला से, मध्यम अग्नि विद्युत रूप से और

सौर अग्नि रश्मियों से युक्त होने से केशी कहलाती है।

त्रयः केशिनः (ऋ० १.१६४.४४) नाम अग्नि का वेद में आया है। अग्नि के पांच भिन्न-भिन्न नामों का कारण—

जातो यदग्रे भूतानाम् अग्रणीरध्वरे च यत्।
नाम्ना संनयते वाङ्गं स्तुतोऽग्निरिति सूरिभिः ॥ २.२४ ॥

अग्नि सब भूतों में प्रथम उत्पन्न हुआ, यज्ञों में भी वह अग्रणी है। अपने शरीर के सब अङ्गों को एकीभूत कर लेता है। इसलिए उसे अग्नि नाम से पुकारा जाता है।

अग्नि का एक नाम **द्रविणोदस्** है। यह धन और बल का दाता है। इसके कर्म के कारण कुत्स ऋषि ने (ऋ० १.९६.८) में इसे द्रविणोदस् नाम दिया।

अग्नि का दूसरा नाम **तनूनपात** है। सूर्य (तनय) से मध्यम अग्नि तनु हुए और फिर मध्यम अग्नि से जन्मा होने के कारण तनूनपात् कहलाया। यास्क के अनुसार **नपाद् इति अनन्तरायाः प्रजाया नामधेयम्** अर्थात् प्रथम सन्तान को नपात् कहते हैं। नपात् की जो प्रजा वह तनूनपात् हुई। दूसरे शब्दों में पार्थिव अग्नि दिव्य अग्नि का पौत्र है।

अग्नि का तीसरा नाम **नराशंस** है। यज्ञों में अग्नि की नर विभिन्न स्तुतियाँ करते हैं। इसलिए यह नराशंस कहलाता है।

नरैः प्रशस्यो भवति (निरु० ८.६)

अग्नि को **पवमान** भी कहते हैं। सारे जगत् को यह पवित्र करता है। इसलिए वैखानस ऋषि ने इसकी पवमान रूप में स्तुति की है।

अग्नि का पाँचवाँ नाम **जातवेदस्** है। वह उत्पन्न हुए प्राणियों को जानता है। इसके उत्पन्न होते ही विद्या का जन्म हुआ। अथवा पुनः पुनः जन्म लेने पर प्राणी इसे जान लेते हैं। इसलिए इसे जातवेदस कहते हैं। शौनक का कथन है कि कर्म से ही नाम की उत्पत्ति होती है।

कर्मभ्यो नाम जायते। (१.२३)

बृहद्देवता के दूसरे अध्याय में शौनक कुछ स्त्री नाम्नी मन्त्र दृष्ट्रियों

के नामों का परिगणन करते हुए लिखते हैं—

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्।

ब्रह्मजाया जूहूर्नाम अगस्तस्य स्वसादिति।

इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती॥

श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेघा च दक्षिणा।

रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिण्य ईरिता॥ बृह० २.८१-८४॥

अर्थात् घोषा, गोघा, विश्वारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया जुहू, अगस्त्य की भगिनी, अदिति।

इन्द्राणी, इन्द्रमाता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदियाँ, यमी, शश्वती।

श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेघा, दक्षिणा, रात्री, सूर्या-सावित्री—ये ब्रह्मवादिनी ऋषिका कही गयी है।

इनमें से प्रथम नौ ने देवताओं की स्तुति की है। बीच की नौ ने ऋषियों और देवताओं से वार्तालाप किया है। तथा अन्तिम नौ ने भाववृत्ति का गायन किया है। इनमें जो सूक्त की ऋषिका है वही सूक्त की देवता भी है।

इस प्रकार अन्तिम नौ ने देवता के रूप में अपनी ही स्तुति की है। अत: इस आत्म स्तुति में ऋषिका ही स्वयं देवी भी है।

ऊपर कह आये हैं कि अन्तरिक्ष का देवता इन्द्र है। इन्द्र से सम्बद्ध मध्य स्थान के देवी देवताओं की गणना करते हुए शौनक ने लिखा है—अदिति, राका, वाक्, सरमा, आप्यगण, सरस्वती, यमी, उर्वशी उषा, लाक्षा, गौरी, रोदसी, इन्द्राणी ये सब मध्यम स्थानी हैं।

सूर्या और उषा द्युस्थानी हैं।

ये सब अन्तरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें हैं। इन्हीं के द्वारा सृष्टि के आदि में वेद की ऋचायें प्रकट हुई थी।

यास्क के अनुसार—**ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।**

उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर शौनक लिखते हैं—

न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्र। —बृह० ८.१२९॥

अर्थात् अनृषि को मन्त्र का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

आगे वे लिखते हैं—

योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्ध्या

बाहुश्रुत्येन तपसा नियोगैः।

उपास्यास्ताः कृत्स्नशो देवाता या

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्।

यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञान्

सामानि यो वेद स वेद तत्वम्॥

अर्थात् योग से, दक्षता से, दम से, बुद्धि चातुर्य से, बहुश्रुति से, तप से और मन्त्रों के कर्म में नियोग देखकर देवताओं का समग्र ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

जिसे ऋचाओं का प्रत्यक्ष होता है उसे देवताओं का भी प्रत्यक्ष हो जाता है। याजुष् ज्ञान से यज्ञों का और साम के ज्ञान से तत्व बोध हो जाता है।

मन्त्रों के देवताओं का जानने वाला व्यक्ति यज्ञों में जो हवि प्रदान करता है, उसे देवता ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु देवताओं से अनभिज्ञ व्यक्ति की दी हुई हवियों को देवता ग्रहण नहीं करते। इसलिए मन से देवता का ज्ञान करके ही हवि प्रदान करनी चाहिए।

मन्त्र के देवताओं को जानने वाला व्यक्ति पवित्र होकर जो स्वाध्याय करता है, उसका उसे वही फल मिलता है जो यज्ञ सत्र में बैठने वाले अथवा स्वर्ग में स्थित व्यक्ति को मिलता है।

नियमोऽयं जपे होमे ऋषिश्छन्दोऽथ दैवतम्।

अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानः तत्फलाच्चात्र हीयते॥

अर्थात् जप और होम विषय में यह सिद्धान्त है—कि ऋषि, छन्द

और देवता का अन्यथा प्रयोग करने वाला व्यक्ति उसके कर्म के फल से हीन हो जाता है।

ऋषि छन्दो दैवतादि ज्ञानं यज्ञादिषु श्रुतम्।
तदाश्रित्य प्राण दृष्टिः विहितात्रेति गम्यताम्॥

अर्थात् ऋषि, छन्द और देवतादि का ज्ञान यज्ञादियों में सुना जाता है। इसके ज्ञान से जीवन को देखने की दृष्टि प्राप्त होती है।

अविदित्वा ऋषिं छन्दो योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता और योग के ज्ञान के बिना जो भी व्यक्ति अध्ययन अथवा जप करता है, वह पाप का ही भागी होता है। उसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।

अर्थेप्सवः खल्वृषयः छन्दोभिर्देवताः पुरा।
अभ्यधावन्निति छन्दो मध्ये त्वाहुर्महर्षयः॥

अर्थात् प्राचीन काल में अभीष्ट अर्थ की इच्छा से ऋषियों ने छन्द के द्वारा देवताओं की शरण ली। इसी हेतु वे ऋषि और देवता के मध्य में छन्द का प्रयोग करते हैं। मन्त्र में सर्वत्र ऋषिजन छन्द के द्वारा ही देवता का ज्ञान करते हैं।

ऋषिं तु प्रथमं ब्रूयात् छन्दस्तु तदनन्तरम्।
देवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवमिति श्रुतिः॥

अर्थात् सर्व प्रथम ऋषि को बतलाकर उसके बाद छन्द तथा फिर देवताओं का कर्म के साथ नियोग बतलाना चाहिए, यही श्रुति है।

जो सब के आधार परमात्मा को अपनी आत्मा में जानते हुए देवताओं का बोध करके वेद को पढता है वह व्यक्ति उस ब्रह्म में प्रवेश कर लेता है। जो अमर, अनन्त, सत्स्वरूप और सत् का एकमात्र आधार, महान् से महान् तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म, विश्वेश्वर और उत्तमोत्तम ज्योति स्वरूप है।

□□

चतुर्दश अध्याय

कात्यायनीय सर्वानुक्रमणी में ऋषि

कात्यायन ऋषि विषय में लिखते हैं—

अथ कोऽयमृषिरित्याह—

यस्य वाक्यं स ऋषिः॥ ४॥

ऋषिर्द्रष्टा। ऋषयोऽनागतातीतवर्तमानार्थ वेदिनः।
अर्त्तेः सनोतेश्च ऋषि शब्दो निरूच्यते।

(वेदार्थदीपिकाषड्गुरुशिष्य)

अर्थात् ज्ञानी को ही ऋषि कहते हैं। ऋषि को किस विषय का ज्ञान होता है? इस पर षड्गुरु शिष्य कहते हैं कि अतीतानागत और वर्तमान तीनों लोकों के दृष्टा पूर्ण ज्ञानी को ऋषि समझना चाहिए।

ऋष्याद्यज्ञानेन मन्त्र कण्टकत्वाद् यागकण्टकत्वाच्चानधि-कृतत्वात् सर्वत्र। तथा हि स्मर्यते—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥ बृहद्० ८.१३६॥

ऋषि आदि के ज्ञान के बिना मन्त्रार्थ का यथार्थ बोध नहीं हो सकता। मन्त्रार्थ बोध के बिना यागादि कर्म अनाधिकारी द्वारा कृत होने से सर्वत्र व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं।

अपि चोक्तम्—

ऋषि छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि
अविदित्वा प्रयुञ्जनो मन्त्र कण्टक उच्यते॥

कण्टकः=पीड़कः इति। (सायण ऋग्वेदभाष्य, भूमिका)

अर्थात् ऋषि, छन्द, देवता, स्वर का ज्ञान वेदार्थ में सहायक होता है। इनके ज्ञान के बिना मन्त्र अनर्थक ही होते हैं।

अथ विदुषः फलमाह—

मन्त्राणां ब्राह्मणार्षेयच्छन्दोदैवतविद् याजनाध्यापनाभ्यां श्रेयोऽधिगच्छति ॥ परिभाषा प्रकरण ॥ ३ ॥

अर्थात् मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवतादि के ज्ञानपूर्वक यज्ञ और अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को ही श्रेयस् की प्राप्ति होती है।

आर्षेयमृषिदर्शनम्। ऋषिपदात् ढक्।

ऋषि दृष्ट को ही आर्षेय कहते हैं। ऋषि पद से ढक् प्रत्यय होकर आर्षेय शब्द निष्पन्न होता है।

अपत्यवदृषेरिष्टं मन्त्रदर्शनमित्यतः।
अपत्यादप्यृषेरिष्टं खलु मन्त्रस्य दर्शनम् ॥
अशपद् वैतश ऋषिः पुत्रं मन्त्रविगर्हकम्।
प्रह्लादः पुत्रमशपद् वेद वेदार्थ दूषकम्।
महाबलिमतोऽपत्यप्रत्ययो दर्शने मतः ॥

किं च—

ऋषिर्मन्त्रदृशं वेदपितरं मन्यते यतः। बृहद्देवता ५.५८ ॥
तद् वसिष्ठासः पितृवद् वाचमक्रत लिङ्गतः ॥

—ऋ० ६.६६.१४ ॥

अर्थात् जैसे किसी गृहस्थ को पुत्र प्राप्ति पर बहुत प्रसन्नता होती है। मन्त्रार्थ ज्ञान होने से किसी ऋषि को उस से भी अधिक प्रसन्नता होती है। मन्त्रार्थ बोध कराने वाले ऋषि को पिता के समान माना जाता है।

अथाज्ञं निन्दति—

एताभ्यामेवानेवंविदो यातयामानिच्छन्दांसि भवन्ति ॥ ४ ॥

एताभ्यां याजनाध्यापनाभ्याम् अनेवंविदः यातयामानि छन्दांसि भवन्ति नास्य रक्षका वेदा इत्यर्थः। स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवतीति विज्ञायते ॥ ५.१ ॥

स चानेवंवित् स्थाणुं वृक्षादि जातिम् प्राप्नोति। स वा खलु

गर्ते नरके कूपे पङ्कवारिमध्ये मण्डूककच्छपादि जातिषु पात्यते। पापीयान् भवतीति दस्युम्लेच्छादि जातिषु जायते। इत्येवं सामवेदार्षेय ब्राह्मण अम्नातम्।

अतो महर्षयः सर्वे वेदविद इति स्थिताः।
अधियते कर्शयन्ति देहं मृत्युं न भुञ्जते ॥

अर्थात् मन्त्र के ऋषि, देवता आदि का ज्ञान न होने से व्यक्ति के यज्ञ और अध्ययनादि सब व्यर्थ ही होते हैं। ऐसा व्यक्ति पाप का भागी ही होता है। और वह नरक में गिरता है। वृक्षादि योनियों में जन्म लेता है।

इस पर षड् गुरु शिष्य कात्यायनीय सर्वानुक्रमाणी पर कृत्स्न वृत्ति में लिखते हैं—

अथेति प्रस्तावे सामान्येन ऋषयः प्रस्तूयन्ते। यहाँ वे 'सामान्य' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। वेदों का यथार्थ द्रष्टा और कर्त्ता तो परमेश्वर ही है। किस अर्थ के द्यौतनार्थ उस परमेश्वर ने मन्त्र विशेष का ऋषि हृदय में प्रकाश किया उस-उस अर्थ के द्रष्टा ऋषि का उल्लेख यहाँ सर्वानुक्रमणी में किया जाता है।

शतर्चिन आद्ये मण्डलेऽन्त्ये क्षुद्रसूक्तमहासूक्तामध्यमेषु माध्यमाः ॥ २ ॥

अर्थेप्सव ऋषयो देवताश्छन्दोभिरभ्यधावन् ॥
सत्यं वै वागृचा स्पष्टेत्यत्र ज्ञातं महर्षिभिः।
ऋगुदाहरणं तस्माद् ब्राह्मणे बहुशः कृतम् ॥

वेदवाक् सत्य है ऋचा स्पष्ट है यह महर्षियों के द्वारा जाना गया। इसी कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋग्वेद के अधिकांश उदाहरण दिये गये हैं। जैसे अन्य देवता एक महान् आत्मा की ही विभूतियाँ हैं। इसकी पुष्टि में ब्राह्मणकारों ने वेद की ही ऋचा उदाहरण रूप में प्रस्तुत की है—**इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निम्—आहुरिति।** अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि उस परमेश्वर को ही कहते हैं।

भाष्यकार आरम्भ में लिखते हैं—

अत्र शास्त्रे नवार्था ज्ञातव्या—सूक्तादि, सूक्तेषु ऋक्संख्या, छन्द, पाद, अक्षराणि, दैवतम्, ऋषेर्नाम, गोत्रं च क्वचित् कथा चेति।

अर्थात् इस शास्त्र में नौ विषयों का ज्ञान कराया गया है—सूक्त, सूक्तों में ऋक्संख्या, छन्द, पाद, अक्षर, देवता, ऋषि, ऋषियों के गौत्र और आख्यान।

अथ शतर्चिनां प्रथमं मण्डलम्।

शुनःशेष का विश्वमित्र के द्वारा नाम परिवर्तन करके देवरात नाम दिया जाना।

कक्षीवान् दैर्घतमसः

प्रथममण्डल के ऋषि दैर्घतमस् कक्षीवान् है।

संवादेषु च सर्वेषु स ऋषिर्यस्य वाक्यं तत्।
आत्मस्तवेषु य ऋषिर्देवता स एवोच्यते॥ (१.१६५)

अर्थात् मन्त्र का व्याख्यान करने वाला ऋषि तथा जिसकी मन्त्र में स्तुति है वह देवता कहलाता है।

अथ गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलम्।

दूसरे मण्डल में गार्त्समद ऋषि हैं।

गार्त्समद ऋषि जन्म का इतिहास।

अथ तृतीयं मण्डलम् वैश्वामित्रम्।

तीसरे मण्डल में विश्वामित्र ऋषि हैं।

अथ चतुर्थ मण्डलम् वामदेवस्य।

चौथे में वामदेव, श्यावाश्व ऋषि हैं।

वामदेव की कथा।

विस्तार से श्यावाश्व का इतिहास

पञ्चममण्डलं आत्रेयम् विद्यात्।

पांचवें में आत्रेय ऋषि हैं।

बार्हस्पत्य भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्।

षष्ठ मण्डल के भरद्वाज ऋषि हैं।

अथ वासिष्ठं सप्तमं मण्डलम्।

सप्त में वसिष्ठ ऋषि हैं।

वसिष्ठ इतिहास।

नवमं मण्डलम् पावमानं सौम्यम्।

नवम मण्डल में पवमान सोम देवता हैं।

इस प्रकार कात्यायन ने सभी मण्डलों के ऋषियों का उल्लेख अपने शास्त्र में किया है।

वेङ्कट माधवीया आर्षानुक्रमणी में ऋषि

वेद की चारों संहिताओं में प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द और स्वर का उल्लेख हुवा है। वेदार्थ ज्ञान में इन चारों विषयों का ज्ञान अनिवार्य है। यह विषय हम पूर्व भी लिख चुके हैं।

यहाँ आर्षानुक्रमणी में वेङ्कट माघव ऋषि विषय में लिखते हैं—

ऋषिनामार्षगोत्राणां ज्ञानमायुष्यमुच्यते।
पुण्यं पुण्यं यशस्यं च स्वर्ग्यं धन्यममित्रहम्॥

अर्थात् ऋषि नाम एवं उनके गौत्र का ज्ञान वेदाध्यायी को दीर्घायु, पुण्य, यश, स्वर्ग, धन धान्य तथा सुपुत्र का देने वाला है और शत्रुओं का नष्ट करने वाला होता है।

इसके आगे कहा गया है कि ऋषियों को उनके नाम और गोत्रों के साथ जानने वाला व्यक्ति एक-एक ऋषि का दिव्य सहस्र वर्ष तक अतिथि होकर पूजित होता है। तथा स्वाध्याय के बहुत बड़े फल को प्राप्त करता है।

इस विषय में आर्षेय ब्राह्मण का वचन है—

स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पशव्यं ब्रह्मवर्चस्यं।
स्मार्त्तमायुष्यम् ऋषि नाम तेषाम् गोत्रज्ञानञ्च भवति॥

अर्थात् ऋषियों के नाम और गोत्र का ज्ञान स्वर्ग, यश, धन, पुण्य, पुत्र, पशु, ब्रह्मवर्चस्, स्मार्तज्ञान एवं आयु के देने वाला होता है।

जो व्यक्ति मन्त्रों के ब्राह्मण, तत्सम्बन्धित ऋषि नाम एवं गोत्र, छन्द, देवता को नहीं जानता, उसके यज्ञादिकर्म और वेद का स्वाध्याय सब निष्फल हो जाता है। वह स्थाणुवत् होकर गड्ढे में गिर जाता है या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तथा पाप भागी भी होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति मन्त्रों के ब्राह्मण, आर्षेय, छन्द एवं देवता को जानकर यज्ञ एवं वेद स्वाध्याय करता है, वह निश्चय से कल्याण को प्राप्त करता है।

इस प्रकरण में यह ज्ञातव्य है कि यहाँ वेद संहिताओं में उल्लिखित ऋषि नाम किसी ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष के नाम नहीं है। ये यौगिक नाम हैं। यौगिक गुण कर्म को अपने में धारण करने वाले व्यक्ति को उस नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इसीलिए मनु महाराज ने लिखा है—

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ १.२१ ॥

संहिता के ऋषियों के विषय में विशेष ज्ञान के लिए ऋग्वेदानुक्रमणी तथा शौनकीय ऋक्सर्वानुक्रमणी का अध्ययन करना चाहिए।

हमारे इस ग्रन्थ निर्माण का प्रयोजन वैदिक संहिताओं में ऋषि पद जिन-जिन अर्थों में प्रयुक्त हुवा है उनको दर्शाना है। तथा कोई व्यक्ति ऋषि पद को कैसे प्राप्त कर सकता है—इस विषय पर भी प्रकाश डालना है। सहृदय व्यक्ति के लिए तो पड़े-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-पहाड़ आदि भी मुखरित होकर उपदेश करने लगते हैं। और जब वे बोलते हैं तो **'यस्य वाक्यं स ऋषिः'** (सर्वानुक्रमणी) के अनुसार वे भी ऋषि ही कहलाते हैं। वेद परमेश्वरीय काव्य है। और काव्य में यह सभी सम्भव है। वस्तुतः तो यह ज्ञान के प्रतिपादन का सहृदय वेदनीय प्रकार है। और इससे वेद की नित्यता कभी खण्डित नहीं होती। वेद काव्यात्मक शैली में ज्ञान विशेष का प्रतिपादन करते हैं। फिर चाहे वह ज्ञान किसी व्यक्ति

के मुख से कहा गया हो या किसी नदी, पहाड़ या पठार की भाषा हो। ऋग्वेदानुक्रमणी का वचन है—

मनुष्यत्वे मन्त्रकृत ऋषयः परिकीर्तितः।
आर्षेयवरणं तेषां तथा च ब्राह्मणं शृणु—
'न देवैर्न मनुष्यैराषेयं वृणीत ऋषिभिरेवार्षेयं वृणीत।'

(आपस्तम्भ श्रोत० २४-५.३)॥

न मन्त्र दर्शनात्पूर्वम् ऋषित्वं प्रत्यपद्यत।

अर्थात् मनुष्य होने पर ही मन्त्र द्रष्टाओं को ऋषि कहा जाता है। उन्हीं का आर्षेय-गोत्रादि ग्रहण किया जाता है। इस सम्बन्ध में ब्राह्मणवचन का प्रमाण है कि न देवों और न सामान्य मनुष्यों से आर्षेय का वरण करना चाहिए अपितु मन्त्र द्रष्टा ऋषियों से ही आर्षेयत्व का ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि मन्त्र द्रष्टा को ही ऋषि कहते हैं। किसी विद्वान् अथवा सामान्य मनुष्य को ऋषि नहीं कहा जाता।

आगे कहा गया है—

न शक्योऽनृषिभिर्वक्तुम् ऋगर्थ इति निश्चयः।
शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः।
यथाशक्त्यनुधावन्ति न सर्वं कथयन्त्यमी॥

अर्थात् ऋचाओं के अर्थ का निश्चय अनृषि को नहीं हो सकता, यह निश्चित मत है। शाकल्य, पाणिनि और यास्क—ये तीनों ऋषि ऋचाओं के अर्थों को बताने में तत्पर हुए और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अर्थ बोध कराने का प्रयत्न करते रहे किन्तु सम्पूर्ण अर्थ को वे भी नहीं कह पाये। शाकल्य ने पदपाठ, पाणिनि ने अष्टाध्यायी और यास्क ने निरुक्त के द्वारा ऋचाओं के अर्थों को स्पष्ट करने का प्रयास किया।

संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः।
निरुक्तव्याकरणयोरासीद्येषां परिश्रमः॥

अथ ये ब्राह्मणार्थानां विवेक्तारः कृतश्रमाः।
शब्दरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि॥
ताँडके शाट्यायनके श्रमः शतपथेऽपि च।
कौषीतके काठके च स्याद् यस्येह स पण्डितः॥

अर्थात् वे आधुनिक विद्वान् जिन्होंने व्याकरण शास्त्र और निरुक्त में परिश्रम किया है वे वेदार्थ के चतुर्थांश को समझने में ही सक्षम होते हैं।

तथा जो विद्वान् ब्राह्मण ग्रन्थों के अभिप्रायों का विवेचन करने वाले हैं तथा जिन्होंने व्याकरण एवं निरुक्त में भी विशेष श्रम किया है वे वेदार्थ को सही समझ सकते हैं।

क्योंकि ताण्डय ब्राह्मण, शाट्यायन ब्राह्मण, शतपथ, कौषितकी, तथा काठक आदि ब्राह्मणों में जिसने परिश्रम किया है वे विद्वान् वेदार्थ-विषय के पण्डित माने जाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण, पैप्पलाद ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण पर कृत भूरिश्रमा विद्वान् को वेदार्थ विषय का वृद्ध कहा जाता है।

शौनक के मतानुसार ऋषि बनने के लिए निम्नगुणों का होना आवश्यक है—

योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्धया बाहुश्रुत्येन तपसा नियोगैः।
उपास्यास्ताः कृत्स्नतो देवता या ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्॥

—बृहद्० ८.१३०॥

अर्थात् योगाभ्यास, शास्त्रनैपुण्य, इन्द्रिय दमन, कुशाग्र बुद्धि, अनेक शास्त्रों का गुरुमुख से सुना हुवा ज्ञान, तप तथा विनियोग पूर्वक की गई देवताओं की उपासना, ये सब साधन व्यक्ति को ऋषि बना देते हैं। ऋषि होकर ऋचाओं के यथार्थ देवता को जानने में समर्थ होते हैं।

वृद्धसेवाभियोगाभ्यामर्थो ज्ञेयः प्रयत्नः। (मन्त्रार्थानुक्रमणी)

अर्थात् ज्ञानवृद्ध पुरुषों की सेवा और (अभियोग) तुलनात्मक अध्ययन से ही व्यक्ति को प्रयत्नपूर्वक मन्त्रों का अर्थ जानना चाहिए।

❑❑

पञ्चदश अध्याय

ऋषियों को नमन

अन्त में हम सभी ऋषियों को श्रद्धामयी हृदय से नमन करते हैं। वेद भी हम लोगों को ऋषियों के लिए नमन करने का आदेश देता है। ऋषि वेदार्थ के ज्ञाता होते हैं। उनका जीवन लोक-कल्याण के लिए ही होता है। उनके उपदेशों से हमारा कर्त्तव्य पथ प्रकाशित होता है। जिनके उपदेशामृत से हमारा जीवन कृतार्थ होता है उनके प्रति हमें नतमस्तक होना ही चाहिए। इसी आशय को अभिव्यक्त करने वाले वेद मन्त्रों के प्रमाण देखिये—

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन्नमस्ते पाह्य१स्मान्॥ १॥

—अथर्व० २.३५.४॥

भावार्थ—घोर तपस्वी ऋषियों के लिए हमारा नमस्ते। इनके मन, वचन, कर्म और चक्षु आदि इन्द्रियों में सच्चाई प्रतिष्ठित है। हे पूजनीय बड़ों से बड़े ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर! आप को हमारा नमस्कार। हे संसार के रचने वाले हम आप को भी नमस्कार करते हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए।

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान्मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन्॥ २॥

—अथर्व० ८.९.२४॥

भावार्थ—पहले से दुही जाती हुई अकेली विराट् प्रकृति ने जीवात्मा के लिए ऐश्वर्य और अमृत को दुहा। और चारों अर्थात् देव, मनुष्य, असुर और ऋषियों को चार प्रकार से तृप्त किया। देवों को ऊर्जा से, मनुष्यों को कृषि और शस्य से, असुरों को माया से तथा ऋषियों को ब्रह्म

(वेद ज्ञान) और तप से [चूँकि ऋषि ब्रह्म (ज्ञान) और तप से तृप्त होते हैं इसीलिए मनु महाराज ने स्वाध्यायात् अर्चयेत् ऋषीन् कहा है।] अर्थात् ऋषियों की वेद स्वाध्याय के द्वारा पूजा करनी चाहिए।

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥ ३॥

—अथर्व० १८.२.२॥

भावार्थ—यम=वायु के लिए उत्तमोत्तम मधु की हवियाँ प्रदान करके इस संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करो। जिस पूर्व उत्पन्न हुए, पूर्व कालिक ऋषियों ने यज्ञयागादि उत्तम पथों का हमारे कल्याण के लिए उपदेश किया है उन्हें हमारा यह श्रद्धापूर्ण नमस्कार समर्पित है।

ऋषिभ्यः स्वाहा॥ ४॥ —अथर्व० १९.२२.१४॥

भावार्थ—ऋषियों के लिए हमारे श्रद्धापूर्ण उत्तम वचन समर्पित हैं।

❑❑❑